ISSN : 2321-3922
अप्रैल - 2025
RNI-BIHHIN05394
वर्ष-12 अंक-41
Regd. No. PT/105/BGP-13/2027

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)
अप्रैल-जून-2025

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष-12 अंक-41

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

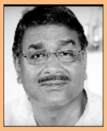

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :
श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
अप्रैल-जून-2025

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अक्टूबर 2025 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

1.	पुरोवाक	संस्थापक की कलम से	दयानंद जायसवाल	5
2.	समीक्षा	जीवन के यर्थाथ का सहज और सजीव चित्रण	दीपक गिरकर	6
3.	समीक्षा	वैचारिकता और चिंतन का सुन्दर समन्वय	मनीष बादल	7
4.	समीक्षा	गोधूलि : जीवन के मध्य से उपजी जीवन की कहानियाँ	अरुण कुमार वर्मा	8
5.	विमर्श	योग का महत्त्व	गौरीशंकर वैश्य	10
6.	समीक्षा	कस्बाई संस्कृति से जुड़ा उपन्यास : किसी शहर में	संतोष मोहन्ती 'दीप'	11
7.	समीक्षा	'दीनू और कौवे' के लक्ष्य को भेदती कविताएँ –	विजय कुमार तिवारी	12
8.	समीक्षा	देर कभी नहीं होती	अनिल मिश्र 'गुरुजी'	15
9.	समीक्षा	सार्थक लघुकथाएँ	दीपक गिरकर	16
10.	समीक्षाएँ	1. कर्ण महाकाव्य का सौन्दर्य सौष्ठव	दयानन्द जायसवाल	17
		2. अमृत देश अंग प्रदेश		18
		3. नवधा		19
		4. शौर्य धरा का राजस्थान		20
		5. उधेड़बुन		21
		6. मैं तो हूँ अलमस्त		22
		7. सुधियों की नागफनी		23
11.	आलेख	साहित्य और मनोविज्ञान का रिश्ता	डॉ० अमर सिंह बधान	24
12.	ग़ज़ले		हमीद कानपुरी	26
13.	कविता	परंपराएँ	डॉ० गिरिजा शंकर मोदी	26
14.	आलेख	सर्जक और सर्जना के पक्षधर	अश्विनी कुमार दुबे	27
15.	आलेख	आह! कब आओगे अतिथि	डॉ० प्रदीप उपाध्याय	31
16.	क्षणिकाएँ		डॉ० नरेन्द्र नाथ लाहा	31
17.	आलेख	कविता और काम का कोई गुरू नहीं होता	गिरेन्द्र सिंह भदौरिया	32
18.	दोहे		डॉ० शरद नारायण खरे	33
19.	ग़ज़ल		अभिनव अरुण	33
20.	कविता	आया वसंत	डॉ० संजय चौहान	33
21.	संस्मरण	दादा लखमी – मन पर गहरी लकीर छोड़ती फिल्म	पंकज सुबीर	34
22.	कहानी	मन के मुड़ेर पर	रंजना जायसवाल	35
23.	कविताएँ	बाराती, धड़कन	संजय वर्मा 'दृष्टि'	37
24.	कहानी	बेनूर	वंदना सहाय	38
25.	कविता	खूँटी पर टंगी कमीज	तेजनारायण राय	40
26.	कहानी	प्रदूषित ध्वनि	मुख्तार अहमद	41
27.	कविता	एक बार फिर से देखो	राधा रमण मिश्र	42
28.	कहानी	राशन की चोरी	डॉ० संतोष सांडू धल्डे	43
29.	कविता	क्या है जीवन	मनोरंजन सहाय	45
30.	कविता	बेदर्दी पीड़ा	नीतू कुमारी	45
31.	कहानी	ए चाँद आसमाँ के	डॉ० पूरन सिंह	46
32.	कविताएँ	कोई चुरा रहा है, ठहरो जरा	डॉ० अंजना वर्मा	48
33.	कहानी	जलन	शंकर प्रसाद मालाकार	49
34.	कहानी	दूसरी औरत	श्यामल बिहारी महतो	51
35.	लघुकथा	मेरे शहर के परिंदे	वसंत राघव	55
36.	लघुकथा	भोजन	सरोजिनी नौटियाल	55
37.	लघुकथा	लाइक एंड कमेंट्स	प्रदीप कुमार शर्मा	56
38.	व्यंग्य	चुनाव ड्यूटी	डॉ० अवधेश चन्दसौलिया	56

कुरुक्षेत्र

वह कौन रोता है वहाँ–
इतिहास के अध्याय पर
जिसमें लिखा है, नौजवानों के लहू का मोल है
प्रत्यय किसी बूढ़े, कुटिल नीतिज्ञ के व्याहार का
जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि शीर्ष वलक्ष है
जो आप तो लड़ता नहीं
कटवा किशोरों को मगर
आश्वस्त होकर सोचता
शोणित वहा, लेकिन, गयी बच लाज सारे देश की
और तब सम्मान से जाते गिने
नाम उनके, देश–मुख की लालिमा
है बची जिनके लुटे सिन्दूर से
देश की इज्जत बचाने के लिए
या चढ़ा जिनने दिये निज लाल हैं
ईश जानें, देश का लज्जा विषय
तत्त्व है कोई कि केवल आवरण
उस हलाहल–सी कुटिल द्रोहाग्नि का
जो कि जलती आ रही चिरकाल से
स्वार्थ–लोलुप सभ्यता के अग्रणी
नायकों के पेट में जठराग्नि–सी
विश्व–मानव के हृदय निर्द्वेष में
मूल हो सकता नहीं द्रोहाग्नि का
चाहता लड़ना नहीं समुदाय है
फैलती लपटें विषैली व्यक्तियों की साँस से।

– रामधारी सिंह 'दिनकर'

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

भारतीय साहित्य ने विश्व मंच पर अपना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। इसके विविध रूप और विषयों की गहराई पाठकों को आकर्षित करती है। भारतीय साहित्य की ताकत इसकी विविधता में निहित है। यह विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं और समाजों के विचारों को सम्मिलित करता है। जैसे–जैसे समय आगे बढ़ता है, यह साहित्य अपने अद्वितीय शैली और गहन विषयवस्तु के माध्यम से पाठकों को प्रेरित करता है। भारतीय साहित्य न केवल अतीत की धरोहर है, बल्कि यह भविष्य की दिशा भी निर्धारित करता रहता है। भारतीय साहित्य विविध विषयों और दर्शन को प्रतिबिंबित करने वाले ग्रंथों का एक विशाल संग्रह है, जिसमें पवित्र, धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष कथाएँ भी शामिल हैं। इसमें महाकाव्य, पौराणिक और ऐतिहासिक कार्य शामिल हैं जो सांस्कृतिक समझ को आकार देते हैं और लोककथाओं को प्रभावित करते हैं। भारतीय प्रतिभा की तरह भारतीय साहित्य भी अत्यंत आत्मसात करने वाला रहा है। समय के साथ जो कुछ भी इसके पास आया, इसने उसे अपना बना लिया। देश में अनेक विदेशी घुसपैठियों ने देश के आदर्शों और विचारों पर अपनी छाप छोड़ी। विदेशी को त्यागने के बजाय, उसे शीघ्र स्वीकार कर लिया गया और आत्मसात करने की प्रक्रिया में भारतीय मन के विशाल जीव में उसका नामोनिशान मिट गया। वर्तमान शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में इतिहास ने खुद को दोहराया है और समकालीन भारतीय चिंतन के अपने अध्ययन से हम पाते हैं कि जीवन, राजनीति, अर्थशास्त्र, धर्म, साहित्य और समाज के हर क्षेत्र में लोग विदेशी और अपने के बीच समझौता करने का प्रयास कर रहे हैं। पुराना भारतीय चिंतन तेजी से बदल रहा है और पुराने और नए के मिश्रण का एक ढांचा बन रहा है। राधाकृष्णन दर्शनशास्त्र में वही किये हैं जो महात्मा गांधी ने राजनीति में और रवींद्रनाथ टैगोर ने साहित्य के क्षेत्र में किया। ये वर्तमान शताब्दी के तीन महान भारतीय विचारक हैं, जिनके विचारों में युग की भावना झलकती है। वे वास्तव में हमारे प्रकाश स्तंभ के रूप में हमारा प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय साहित्य और विश्व साहित्य दोनों में मानवता के महत्व को उजागर करने का प्रयास किया जाता है। इसमें व्यक्तिगत, सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण समाहित होते हैं। कुछ भारतीय और विश्व साहित्य के लेखक और कृतियाँ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित हैं। उनकी रचनाओं को विश्व स्तर पर मान्यता मिलती है और उनका योगदान दुनिया भर के पाठकों को अपनी साहित्यिक धारा से प्रेरित करता है। भारतीय साहित्य में हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई और अन्य संस्कृतियों का समावेश होता है, जिससे साहित्यिक विविधता प्रकट होती है, जबकि विश्व साहित्य में पश्चिमी संस्कृति का अधिक प्रभाव होता है। सामाजिक समस्याओं को समझाने और हल करने के लिए साहित्य को प्रेरित किया जा सकता है। साहित्यकारों को समाज की वृद्धि और गिरावट की समस्याओं पर ध्यान देना चाहिए और सामाजिक या राजनीतिक उपायों का सुझाव होना चाहिए।

साहित्य के माध्यम से रचनाकार अपने विचारों, अनुभवों और अभिव्यक्ति को व्यक्त करते हैं, जिससे वे समाज को चित्रित, प्रेरित और बोध की ओर अग्रसर करने का प्रयास करते हैं। साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, गद्य आदि शामिल हैं। यह कई भाषाओं में, कई सांस्कृतिक संदर्भों में और कई कला प्रथाओं में मौजूद है। साहित्य का मुख्य उद्देश्य, ज्ञान, बोध, मनोरंजन, सृजनात्मकता, को बढ़ावा देना है। इसके माध्यम से हम संगीत, समाज, धर्म, राजनीति, प्राकृतिक दृश्यों और बहुत कुछ पर गहराई से विचार कर सकते हैं। साहित्य का स्वरूप और महत्व हर किसी व्यक्ति या समाज के लिए विशेष होता है। यह मानवता के अन्य सभी कलाओं के साथ मिलकर जीवन को संपूर्ण और समृद्ध बनाता है। अच्छा साहित्य वही है जो मानव समाज की चेतना को उत्कृष्ट करने में सहायक सिद्ध हो, कहा जाता है जब आप किसी अच्छे साहित्य का अध्ययन करते हैं, तो जो आप पहले होते हैं साहित्य पढ़ने के बाद आप वैसे नहीं रह जाते, आपकी चेतना में एक वृद्धि की अनुभूति होती है, यही अच्छे और सार्थक साहित्य का लक्ष्य होता है। विभिन्न क्षेत्रों में उच्चतम विचारों और अनुभवों से परिचित करने के लिए भारतीय साहित्य एक समृद्ध और विविध धरोहर है। इसमें भाषा, सांस्कृतिक विरासत और कई धार्मिक और सामाजिक मूल्यों की अलग–अलग विशेषताएं दिखती हैं। भारतीय साहित्य न केवल मनोरंजन का स्रोत है, बल्कि एक जीवन दर्शन, उत्साह और विचार का स्रोत है जो हमें सुखी और बोधपूर्ण, विवेक से जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

आज साहित्य की विभिन्न विधाओं में हजारों की तादाद में रचनाएं हो रही हैं। यदि साहित्यिक वैश्विक पटल पर देखें तो रोज दिन साहित्य की रचना विभिन्न माध्यमों में हो रही है। वह माध्यम चाहे मुद्रित हो अथवा गैर पारंपरिक हर माध्यम में रचनाएँ की जा रही हैं। तकनीक के विकास के साथ ही लेखन की चौहद्दी टूट गई है। अब सोशल मीडिया में भी साहित्यिक रचनाएँ लगातार हो रही हैं। लेखक अब संपादक, पत्र–पत्रिका आदि का मुँहताज नहीं रहा। यह अलग विमर्श का मुद्दा है कि जो चीजें लिखी जा रही हैं क्या उन्हें हम साहित्य मानें या त्वरित टिप्पणियों की श्रेणी में रखें। सवाल यह भी उठता है कि वर्तमान समय में लिखी जा रही कविताएँ, कहानियाँ, व्यंग्य, टिप्पणियां क्या साहित्य में गिनें या महज गद्य की विधाओं की रचनाओं के खाँचे में डालें। अब एक अहम सवाल यह भी उठता है कि जो लिखा जा रहा है क्या उसका मूल्यांकन, समीक्षाएँ, जाँच–पड़ताल जैसी कोई चीज हो भी रही है या नहीं। क्योंकि जो कुछ भी लिखा जा रहा है उसकी महत्ता और औचित्य का निरीक्षण करना भी आवश्यक है। क्योंकि भारतीय साहित्य न केवल अतीत की विरासत है, बल्कि यह भविष्य के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सादर...।

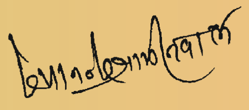

समीक्षा

जीवन के यथार्थ का सहज और सजीव चित्रण

दीपक गिरकर
वैभव नगर, कनाडिया रोड, इंदौर
मोबाइल–9425067036

'एक बूँद समंदर' मीनाक्षी दुबे का पहला कहानी संग्रह है जिसमें उनकी 14 उत्कृष्ट कहानियों का समावेश किया गया है। सभी कहानियाँ अपने आप में विशिष्ट हैं। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। मीनाक्षी दुबे ने स्त्री विमर्श के विविध आयामों को कहानियों के माध्यम से सफलतापूर्वक इस कहानी संग्रह में हमारे सामने प्रस्तुत किया है। मीनाक्षी दुबे की कहानियाँ फार्मूलेबाजी और वैचारिक साँचों या निकष से उपजी कहानियाँ नहीं हैं, वे सीधे–सीधे जीवन से उपजी हैं। अधिकांश कहानियों में मीनाक्षी दुबे ने अपनी स्मृतियों एवं अनुभवों का सफल एवं संतुलित उपयोग किया है। कहानियों से गुजरते हुए स्वाभाविकता और स्थानीयता का गहरा बोध होता है। कहानियाँ पाठकों से बातें करती हैं। मीनाक्षी दुबे की लेखनी अपने पात्रों के मूर्तरूप को पाठकों के सम्मुख लाने में समर्थ है।

संग्रह की हर कथा का अपना रंग है। स्त्री जीवन को केन्द्र में रखती कुछ उल्लेखनीय कहानियाँ संग्रह में मौजूद हैं–'तरल', 'आधा चाँद', 'किलाकोट', 'खाँसी' और 'बसंत कुछ स्ट्रोक्स'। ये कहानियाँ स्त्री जीवन की चुनौतियों और स्त्री जीवन की समस्याओं से रू–ब–रू हैं। 'तरल' एक स्त्री के सम्पूर्ण जीवन की, उसके सपनों की, उसके अनुभवों की एक कहानी है जिसमें कथाकार ने विभिन्न रंगों के माध्यम से स्त्री की नियति को दर्शाया है। शिल्प की नवीनता, भाषा–शैली और भावाभिव्यंजना से इस कहानी की मधुरता प्रकट हुई है। 'आधा चाँद' कहानी कम उम्र की विधवा स्त्री की जीवनगत त्रासदियों को बेपर्दा करती है। कहानी में नानी की जीवन–स्थिति और मन:स्थिति को बड़े ही कलात्मक, पर मर्मस्पर्शी शब्दों में कहानीकार ने चित्र–विधान किया है — "एक दिन यह तूफान कुछ इस तरह आया कि बढ़ता ही चला गया, जंगली जानवर की हुंकार की तरह साँकल खड़कती ही जा रही थी। समझाइश के बूढ़े और थके स्वर भी सुनाई पड़ रहे थे लेकिन उन पर एक युवा हुंकार हावी थी। उठा–पटक और धक्का–मुक्की के स्वर के बाद पुरुषत्व की तेज दहाड़ सुनाई पड़ी, साथ ही बूढ़ी हड्डियों की कराह भी। कराह बढ़ती जा रही थी और नानी के मन में उतरती जा रही थी। एक बेटे को खो चुके बूढ़े की कराह पर भारी दंभी और कामुक पुरुष स्वर सुनाई दिया..."

संग्रह की शीर्षक कहानी 'एक बूँद समंदर' गाँव के डूब में आने के कारण विस्थापन के दर्द का पल–पल एहसास कराती है। कहानी को लेखिका ने काफी संवेदनात्मक सघनता के साथ प्रस्तुत किया है। 'किलाकोट' संजा की समग्र प्रस्तुति है। 'किलाकोट' नारी की संवेदनाओं को चित्रित करती स्त्री छुन्नू की एक मर्मस्पर्शी, भावुक कहानी है जो विपरीत परिस्थितियों में भी हँसते–मुस्कुराते अपने घर के सपने को हकीकत में बदल देती है। यह एक आदिवासी स्त्री छुन्नू के संघर्ष की कहानी है। छुन्नू का किलाकोट का सपना खोली से शुरू होकर उसका अपना घर बन जाता है। छुन्नू एक बिंदास स्त्री है। इस कहानी की पात्र छुन्नू को जिस प्रकार कथाकार ने गढ़ा है, उससे ऐ सा लगता है कि छुन्नू सजीव होकर हमारे सामने आ गई है। खाँसी स्त्रियों के दुखों की प्रतीकात्मक कहानी है। कहानीकार ने मक्कू और उसकी माँ सुगना की छटपटाहट को मक्कू कहानी में स्वाभाविक रूप से रेखांकित किया है। कोहरा कहानी में कहानी के मुख्य किरदार को अपने पिताजी को लेकर अपने बचपन की बातें याद आती हैं और उसके मन से कोहरा छंट जाता है और वह अपने पिताजी की हर तरह से सेवा करता है। 'बसंत–कुछ स्ट्रोक्स' तो भावनाओं पर आधारित एक अविस्मरणीय कहानी है। कथाकार की परिवेश के प्रति सजग दृष्टि है। कहानी रोचक है। कहानी में सहजता है। इस कथा में अनुभूतियों की मधुरता है, यह कहानी मीनाक्षी दुबे के सामर्थ्य से परिचित कराती है। कथाकार ने कहानी में प्रतीकों, बिम्बों, सांकेतिकता का सार्थक प्रयोग किया है।

गुम्मा कहानी में एक मासूम लड़की गुम्मा जो कि शारीरिक रूप से तो परिपक्व हो जाती है लेकिन मानसिक रूप से वह छोटी बच्ची ही बनी रहती है, की मार्मिक व्यथा उजागर हुई है। बिना छत वाला घर कहानी एक अलग तेवर के साथ लिखी गई है। रात में ससुर अपनी बहू के साथ गलत हरकत करता है। सुबह बहू अपनी सास को ससुर की हरकत से अवगत कराती है लेकिन सास बहू को समझाती है कि अब तुम चुप्पी साध लो नहीं तो अपने घर की बदनामी होगी। बहू अपने बच्चों को लेकर अपने पति के पास चली जाती है और अपने पति को अपने ससुर की हरकत के बारे में बताती है। पति अपने पिता को गन्दा आदमी कहकर अपनी पत्नी को गले लगा लेता है। पीले पत्ते की थिरकन कहानी का कैनवास बेहतरीन है। एक नयी बहू को ससुराल में अपने सपनों का गला घोंटना पड़ता है लेकिन फिर वह धीरे–धीरे संघर्ष के द्वारा अपने सपनों को अपने बच्चों के माध्यम से पूरा करती है। इस संग्रह की अन्य कहानियाँ फेयर ड्राफ्ट, राह तकते फूल, मुस्कुराती तस्वीर की जगह यथार्थवादी जीवन का सटीक चित्रण है और लंबे अंतराल तक जेहन में प्रभाव छोड़ती हैं।

मीनाक्षी दुबे ने स्त्री पीड़ा को, उसकी इच्छाओं, आकांक्षाओं, भावनाओं और सपनों को अपनी कहानियों के माध्यम से चित्रित किया है। इस संग्रह की कहानियों में स्त्रियों के जीवन की पीड़ा, उपेक्षा, क्षोभ, संघर्ष को रेखांकित किया है और साथ ही समाज की विद्रूपताओं को उजागर किया है। इन कहानियों का कैनवास काफी विस्तृत है। ये कहानियाँ मध्यवर्गीय जीवन से लेकर निम्न वर्ग तक के जीवन की विडंबनाओं और छटपटाहटों को अपने में समेटे हुए हैं। इन कहानियों में यथार्थवादी जीवन, पारिवारिक रिश्तों के बीच का ताना–बाना, आर्थिक अभाव, पुरुष मानसिकता, स्त्री जीवन का कटु यथार्थ, बेबसी, शोषण, उत्पीड़न, स्त्री संघर्ष, स्त्रीमन की पीड़ा, स्त्रियों की मनोदशा, नारी के मानसिक आक्रोश आदि का चित्रण मिलता है। संग्रह की सभी कहानियाँ जिंदगी की हकीकत से रूबरू करवाती है। लेखिका अपने आस–पास के परिवेश से चरित्र खोजती है। कहानियों के प्रत्येक पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषता है, अपना परिवेश है जिसे लेखिका ने सफलतापूर्वक निरूपित किया है। मीनाक्षी दुबे की कहानियों में सिर्फ पात्र ही नहीं समूचा परिवेश पाठक से मुखरित होता है। विश्वास है लेखिका भविष्य में और अधिक कहानियाँ लिखकर अपनी सशक्त लेखनी का प्रदर्शन करेंगी।

पुस्तक– एक बूँद समंदर(कहानी संग्रह), लेखिका– मीनाक्षी दुबे, प्रकाशक– बोधि प्रकाशन, सी–46, सुदर्शनपुरा, इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंशन, नाला रोड, 22 गोदाम, जयपुर– 302006

समीक्षा

मनीष बादल
भोपाल (मध्य प्रदेश)

वैचारिकता और चिंतन का सुंदर समन्वय: 'मैं तो हूँ अलमस्त'

सृजन मानवीय जीवन में नई उम्मीदें जगाता है। 'मैं तो हूँ अलमस्त' सुमन आशीष का पहला ग़ज़ल संग्रह है। उन्होंने बहुत कम समय में ही रचनाकारों के बीच अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करायी है। सुमन आशीष विचारक रचनाकार हैं। उनकी ग़ज़ल में दर्शन विचार और सामाजिकता अनायास ही है। इन ग़ज़लों में चिंतन, वैचारिकता एवं सामाजिक मुद्दों पर प्रखरता से लिखा गया है। समकालीन जीवन की घोर त्रासदियों के बीच संवेदनात्मक मूल्य किस तरह खत्म हो रहे हैं, हमारी संस्कृति परंपरा कैसे छिन्न–भिन्न हो रहे हैं, सामाजिक एवं मानवीय रिश्तों एवं मुद्दों पर गहन चिंतन इस संग्रह में छलकता है। ये शेर इस बात की बानगी हैं।

जो आँसू मुस्कुराकर पोंछ ले अपनी खुशी से
कोई मिलता नहीं है आजकल ऐसा जमीं पर
जरा लहजा बदलकर बोलने से टूट जाता दिल
कहाँ दिल तोड़ने के वास्ते पत्थर जरूरी है
बाऊजी–माँ को कभी मत छोड़ना
भाई को यह बात कहनी है मुझे।

सुमन आशीष की ग़ज़लें व्यक्ति, परिवार, समाज, देश की अनेक स्थितियों को बयां करती हैं। पारदर्शिता तथा स्पष्टवादिता इन ग़ज़लों की विशेषता है। सुमन आशीष ने गहन अनुभूतियों को शब्दों में पिरोकर ग़ज़ल में प्रस्तुत किया है। उनके कथ्य अपने आस–पास के परिवेश के हैं जो अंतस को गहनता से छूते हैं। इस संग्रह में मनोभावों, अनुभूतियों की सार्थक अभिव्यक्ति, जीवन की व्यवहारिकता, सद्भाव, सहिष्णुता की भावप्रवणता के साथ दु:ख, दैण्य, वैराग्य के धूसर रंग भी सहजता से प्राप्त होते हैं।

पत्थर हूँ मुझको तुम छूकर
कब निर्मल हे राम करोगे
कब आओगे मेरे मालिक
मेरा घर कब धाम करोगे
रिश्तों की गहराई का सच
वक्त हमें दिखला जाता है
वक्त हो या हो नहीं पर
रूह का संवाद रखिए
एक प्याला जहर का तुम दे गए थे
तबसे वो प्याला जहर का पी रही हूँ
राम का बनवास बस चौदह बरस था
मैं इसे कब से न जाने जी रही हूँ।

यह ग़ज़लें पाठक को समाज–संस्कृति में बढ़ती विकृतियों पर गंभीरता से विमर्श का मौका देती हैं। इनका वैचारिक फलक और अनुभव संसार बेहद विस्तृत है। यह बौद्धिक और भावपरक संवेदनाओं का ऐसा सम्मिश्रण है जो पाठक को लोकजीवन, जन–संवेदना, आमजन की रोजमर्रा की अवहेलनाओं और कड़वाहटों की गहराई से अनुभूति कराती है।

बस्ती के ज्यादातर होते घर टाटी के
दिल पर नश्तर खूब चलातीं सर्द हवाएँ
हँसा करतीं बत्तीसी खिलखिलाकर गाँव के घर में
चली आई शहर सब खो गयीं किलकारियाँ मेरी
चमन में हर तरफ है आग दमकल को खबर दे दो
कहीं इंसानियत के चिह्न दिखें तो इधर दे दो
ये अँधेरे छोड़ देंगे रास्ते
दीप छोटा–सा जलाओ तो सही।

आज के स्वार्थपरक संसार में प्रेम, स्नेह, भाईचारा कहीं खो गया है। सच्चाई और ईमान की बातें अब मिथक लगती हैं। परंतु उनका सच पर विश्वास अडिग है। सत्य हरगिज न छोड़िए जग चला जाए तो चला जाए। इनकी शायरी अफसरशाहों की नौकरशाही मानसिकता उघाड़ती हैं। सत्ता पर काबिज नेता आम आदमियों की समस्याओं के निवारण के स्थान पर उन्हें मिलने वाली सुविधाओं का स्वयं इस्तेमाल करते हैं।

मुहब्बत की जबानों पर जमी है बर्फ की चादर
गलाना है इसे इक धूप का टुकड़ा मिलेगा क्या
सच का घर आबाद रखिए
मरना भी है याद रखिए
जी हुजूरी का हुनर सीखा नहीं है
दोष ज्यादा और कुछ मेरा नहीं है
झूठों की महफिल में झूठा
सच का दावेदार हुआ है
रोज ढहते हैं उम्मीदों के भवन
खामखाँ के वायदे करती यहाँ सरकार क्यों
गरीबी को हटाने के सभी वायदे हुए झूठे
अमीरों को हटाने की सियासत को फिकर दे दो।

'मैं तो हूँ अलमस्त' आमजन की आत्मचेतना में स्थापित आस्था की यथार्थपरक अभिव्यक्ति है। अनुभव की धीमी आँच पर पकी ये ग़ज़लें जन–जन की आंतरिक संवेदनाओं को प्रखरता से प्रस्तुत करती हैं।

श्वेतवर्णा प्रकाशन, नोएडा

समीक्षा

गोधूलि: जीवन के मध्य से उपजी जीवन की कहानियाँ

अरुण कुमार वर्मा
पदमा, मंडला, म.प्र.,
मो.– 9754128757

'गोधूलि' समकालीन हिन्दी कहानीकारों में अपनी पहचान बनाने वाले युवा पीढ़ी के सशक्त हस्ताक्षर आदित्य अभिनव जी का कहानी संग्रह है। यह संग्रह परिकल्पना प्रकाशन, अजीत विहार, दिल्ली से फरवरी, 2023 में प्रकाशित हुआ। विवेच्य संग्रह सामाजिक जीवन के विविध आयामों को मानवीय संवेदना के धरातल पर लाकर पात्रों के मनोविज्ञान को बहुत ही सहजता से पाठकों के मन–मानस तक पहुँचाने में सफल हुआ है। संग्रह में कुल ग्यारह कहानियाँ संकलित हैं। संग्रह की प्रत्येक कहानी हमारे जीवन के मध्य से उपजी जीवन की कहानी है। संग्रह में समकालीन जीवन की सच्चाइयों को बहुत ईमानदारी से अभिव्यक्त किया गया है। इसमें एक तरफ किन्नर–जीवन की विडंबनाओं पर बहुत मार्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है तो दूसरी तरफ टूटते परिवारों की गहरी संवेदना है। कहीं स्त्री जीवन का अंतर्द्वंद्व है तो कहीं सांप्रदायिक उन्माद में स्थापित होता सामाजिक सामरस्य, कहीं अर्थाभाव की करुण गाथा तो कहीं बाल मन की छुवन। इन सारे सरोकारों को बहुत ही मार्मिक तरीके से संगुंफित किया गया है। आदित्य अभिनव मानवीय संवेदना के कथ्य, भाषा, संवाद और शिल्प के स्तर पर इन कहानियों के माध्यम से नयी जमीन तलाशते नजर आते हैं।

'गोधूलि' संग्रह की प्रथम कहानी 'मानुष तन' है। यह कहानी किन्नर जीवन की संवेदना से जुड़ी है। हमारे समाज ने किन्नर को लेकर जिस अवधारणा को समझा और जाना जाता है, कहानी उसके विपरीत है। हम यह भूल जाते हैं कि किन्नर भी इसी लोक का संवेदनशील प्राणी है। उसके हृदय में भी मानवीय स्पंदन होता है। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने उसे भी समाज का आत्मीय सदस्य बना दिया है। समाज के बनाए घृणा के आवरण को भेद कर उसके अंदर भी मनुष्यत्व है, ऐसा स्वीकारने के लिए कहानी हमें झकझोरती है। यह कहानी तथ्य की दृष्टि से जितनी संवेदनशील है कहन की दृष्टि से उतनी ही विशिष्ट है। किन्नर जीवन की कहानियाँ और उपन्यासों से इतर यह कहानी ग्रामीण परिवेश में जन्मे किन्नर की उदात्तता को उद्घाटित करती है। अनारो के एक वक्तव्य से कहानी की मार्मिकता का अंदाजा लगा सकते हैं, 'अम्मा! क्या एक अंग नहीं होने से आप की बेटी नहीं हो सकती? बोलो न अम्मा! क्या मैं भी बेटा या बेटी की तरह आपके गर्भ में नौ महीने नहीं रही थी? तो फिर क्यों ऐसा है कि हम समाज में इज्जत से नहीं जी सकते? अपने माँ–बाप के साथ नहीं रह सकते? उनके बुढ़ापे का सहारा नहीं बन सकते? बोलो न अम्मा! बोलो न!' अनारो का यह संवेदनशील सवाल समाज के हर हृदय को छलनी कर उनके अधिकार के प्रति सजग और सचेत होने को प्रेरित करता है।

संग्रह की दूसरी कहानी 'छिमा माई छिमा' है, जिसमें ग्रामीण समाज की घात–प्रतिघात की जटिलताओं की गहन पड़ताल है। कहानी का प्रत्येक पात्र ग्रामीण अंचल की भावभूमि को जीवंतता प्रदान करता है। कहानी के संजय बाबू के किरदार को जिस सच्चाई से लेखक ने रचा है वह कफन के घीसू और माधव की भाँति बहुत सशक्त बन पड़ा है। इसे कफन का 'पार्ट टू' कह सकते हैं। विवेच्य कहानी आर्थिक अभाव की कहानी है लेकिन कहानी की सबसे बड़ी विशेषता है कि कोई भी पात्र अभाव की बात नहीं करता बल्कि उसके मनोभाव और हाव–भाव से अभिव्यक्त होता है। संजय बाबू का भतीजा चंद्रकांत दुर्गा माई की स्थापना के लिए एक हजार रुपये भेजा था। पैसा देखने के बाद परिवार के सदस्यों की आशालता लहलहा उठी। कहानी का एक–एक पात्र एवं एक–एक संवाद गाँव के परिवेश को जीवंत बना देता है। पैसे को संजय बाबू माँ के लिए दूध की व्यवस्था, बच्चों के लिए कॉपी–किताब और कपड़े खरीद लेते हैं। आधा किलो गोश्त ले लेते हैं। अपने पास बचे अस्सी रुपये में विपिन चाचा के बीस रुपये मिलाकर सत्तन खलीफा के भोग के लिए देशी शराब का दो पाउच ले लेते हैं। पाउच पीने के बाद संजय बाबू और विपिन चाचा, घीसू और माधव की भाँति गाते हैं– "चले सखी चले धोए मनवा के मैली।" दुर्गा माई की बन रही मूर्ति के सामने पहुँच कर माई से छिमा माँग कर अपराधबोध से मुक्त होते हैं। लेखक का रचना विधान इतना सशक्त है कि संजय बाबू का घृणित कार्य भी पाठकों के मन में करुणा का भाव उत्पन्न करता है।

'स्वप्नजाल' कहानी आधुनिकता बोध की कहानी है। बदलते समाज में नए–नए मूल्य गढ़ गए हैं जिसमें अहं और पैसे के पीछे भागते मानव ने अपने जीवन को भी दाँव पर लगा दिया है। कहानी का नायक मधुरेश एक बहुराष्ट्रीय कंपनी में जोनल मैनेजर है। छह महीने में चालीस करोड़ का टारगेट पूरा करने के पीछे ऐसा पागल हो गया था कि उसने खुद का सुध–बुध ही खो बैठा। उसका एक्सीडेंट हो गया और वह पारालाइज्ड हो गया। पत्नी निशा भी उसी के पद चिह्नों पर चलते हुए बेटी इड़ा को डॉक्टर बनाने के लिए चंदानी रियल स्टेट एवं डेवलपर्स कंपनी के कार्यालय में नौकरी कर ली, जहाँ उसने अपने शरीर को दाँव पर लगा दिया। अपने सपनों के पीछे–पीछे भागते–भागते अंत में उसे एहसास होता है कि उसे सपने की नहीं मधुरेश की जरूरत है जिसे अपने सपनों के आगे गँवा दिया है। लेखक ने इस कहानी में यथार्थ की पृष्ठभूमि पर ऐसा चरित्र गढ़ा है जो हमारे आस–पास घटित होते दिखता है जो मैं भी हो सकता हूँ या मेरा पड़ोसी, करीबी या संबंधी।

'कोख' कहानी एक ऐसे दाम्पत्य की कहानी है जिसकी कोख सूनी है। कोख भरने की चाहत में ओझा, मौलवी, तांत्रिक सबके चक्कर लगाए। सबके शोषण का यथार्थ और मार्मिक चित्रण कहानी में हुआ है। लेखक ने दिखाया है कि तांत्रिक, ओझा और मौलवी के काले–कारनामों में पढ़ा–लिखा व्यक्ति भी फँस कर इनके बहकावे में आ जाता है, जहाँ उसके धन और धर्म का शोषण होता है। कहावत भी है मरता क्या न करता। यह कहानी सिर्फ वायुसेना में नौकरी कर रहे अनिमेष की ही नहीं है, यह आज भी गाँव की घर–घर की कहानी है। लेखक ने इसके चित्रण में जीवंतता ला दी है।

'माँ' कहानी औरत के अंतर्द्वंद्व की कहानी है। माँ के सरोकार अलग हैं और बहू के अलग। घोर आत्मकेन्द्रित होने की दौड़ ने हमारे सोचने की शक्ति को प्रभावित किया है जिससे हमारे सोचने की शक्ति स्वयं तक सिमट कर रह गयी है। इस सोच ने समाज और परिवार के दायरे को इतना सीमित कर दिया है कि हम 'स्व' से निकल ही नहीं पाते। घर और परिवार त्याग की बेदी पर चलता है। त्याग का अभाव परिवार में कलह का कारण बनता है। सामान्य रूपों में यह समस्या निम्नवर्गीय परिवारों में ज्यादा दिखाई देती है परंतु लेखक ने अभिजात्य परिवार में इस कलह को दिखाया है। डॉ. आनंद अम्बिकापुर में सहायक प्राध्यापक हैं। पत्नी प्रिया दादी के लिए बच्चे को पगली दादी, कुत्ती दादी, दुष्टी दादी जैसे संबोधनों को सिखाती है। आनंद, पत्नी और माँ के झगड़ों के बीच किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। वह पत्नी और बच्चे के साथ अम्बिकापुर में रहता है और माँ को अकेले गाँव में छोड़ देता है। माँ के मरने के बाद जब बक्सा खोला गया तो उसमें एक पाँच लाख का फिक्स डिपोजिट का पेपर था जिसके नॉमिनी में आनंद का नाम लिखा था और एक तीन तोले का माँग टीका जिसमें लगे कागज पर लिखा गया था यह बहू के लिए है। ऐसी होती है माँ और माँ की ममता। लेखक की विशेषता है कि

वह किसी कहानी में उद्देश्य सेट नहीं करता बल्कि परिवेश में ही उद्देश्य झलकता है। इसलिए इनकी कहानियों में करुणा का पुट अधिक होता है।

'क्षितिज के पार' कहानी मध्यवर्गीय परिवार के एकाकीपन की कहानी है। संयुक्त परिवार के टूटने से लोगों में एकाकीपन बढ़ने का वातावरण निर्मित हुआ है। डॉ. निरंजन सहाय एसोसिएट प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त हुए हैं। उनको कोई संतान नहीं थी। पत्नी नलिनी चाहती थी कि उसकी बहन की बेटी डॉली उसके साथ रहे किन्तु डॉली के मम्मी–पापा चाहते थे कि वह उनके पास रह कर पढ़ाई पर फोकस करे। डॉली के प्रति लगाव और उसके पास न होने पर नलिनी धीरे–धीरे सूखती चली गयी और उसका देहांत हो गया। निरंजन सहाय पत्नी के न होने पर उसके प्रति समर्पित थे। ऐसा लगता था कि नलिनी सदैव इनके साथ है। उनका यह प्रेम महादेवी वर्मा की इन पंक्तियों के समानांतर पहुँच जाता है– "पर शेष होगी मेरे प्राणों की क्रीड़ा/ तुमको पीड़ा में ढूँढा तुममें ढूँढेगी पीड़ा।" कहानी का यह भाव नलिनी डॉली के प्रति समर्पित है और निरंजन सहाय नलिनी के प्रति, जिससे इनको आभास होता था कि नलिनी सदैव इनके साथ है।

भूमंडलीकरण से विश्व की संस्कृति प्रभावित हुई है। भारतीय संस्   ति में भी इसके परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार की जगह न्यूक्लियर फेमिली का चलन बढ़ा है। हम संस्कृतियों के संक्रमण काल से गुजर रहे हैं। नित परिवर्तित होती जीवन शैली के प्रभावों–दुष्प्रभावों को वर्तमान कहानियों में देखा जा सकता है। आदित्य अभिनव ने भी इस विषय को बहुत मार्मिक तरीके से उठाया है। 'मजबूर' कहानी इसी पृष्ठभूमि से प्रभाव ग्रहण करती है। रवि मुम्बई में शिप में नौकरी करता है। उनके साथ उनकी पत्नी रश्मि और बेटा अमित जोकि अभी छोटा है, अतएव उसकी देखरेख के लिए रवि पिताजी को अपने साथ मुम्बई ले आया था। रश्मि वहीं बगल के स्कूल में टीचर की नौकरी ज्वाइन कर ली थी। रवि जब शिप पर जाता था तो छह–सात महीने बाद लौटता था और आने पर दो–तीन महीने मुम्बई में ही रहता था। रश्मि का संबंध स्कूल के मैनेजर से हो गया है। पिताजी को उसके संबंधों का पता चल गया। रश्मि ने रवि के लौटने पर पिताजी को घर भेजने का दबाव बनाया। एक पिता की मजबूरी को कहानी में स्थान दिया गया है। किस तरह से वे इस बात को बेटे से बताएँ। फोन पर वे बोल गए– "बेटा एक पिता की मजबूरी क्या होती है तुझे क्या बताऊँ? बस इतना ही कि सच को तुम्हारे सामने रखकर मैं तुम्हें दु:खी नहीं देखना चाहता। भगवान तुम्हारे पारिवारिक जीवन को बनाए रखें। अब रखो बेटा फोन रखो।" राघव जी फूट पड़े। उन्होंने मोबाइल काट दिया।

'चॉकलेट' कहानी बालमन की बहुत ही सच्ची झाँकी प्रस्तुत करती है। एक तरफ कहानी संविदा शिक्षक की स्थिति–परिस्थिति का चित्राण करती है तो दूसरी ओर अंश पर अभाव के मनोविज्ञान का बहुत ही यथार्थ चित्रा खींचती है। शव यात्राा में उछाले गए किंडर जॉय से अपनी साध पूरी कर रहा था।

'ताजिया' कहानी का कथानक बहुत सशक्त है। साम्प्रदायिक अंतर्विरोध को लेखक ने अतीत की परंपरा से वर्तमान का समाधान सुझाया है। गंगा–जमुनी संस्कृति को वर्तमान के धार्मिक उन्माद धूमिल कर रहे हैं। यह वह धरती है जहाँ कृष्ण के गीत रसखान ने गाए हैं और कर्णावती की राखी की लाज हुमायूँ ने रखी है। धार्मिक सद्भाव के लिए जो फटकार कबीर ने लगायी है, वर्तमान में वही भाव रचने का साहस अभिनव आदित्य ने अपनी कहानी के माध्यम से किया है। भारत के संदर्भ में यह कहानी कालजयी कहानी है। इस कहानी में लेखक का दर्शन दृष्टिगत हुआ है जिसमें एक लेखक के लिए राष्ट्र के प्रति उसके दायित्व का निर्वहन किया गया है। प्रोफेसर रामेश्वर उपाध्याय के निष्कलुष रक्त की धार कहानी को यथार्थ के धरातल पर ला देती है। विवेच्य कहानी में आदित्य अभिनव की कलम की धार का उदाहरण देखिए– "यदि हम यहाँ चूक गए, तो हार गए, ताजिया नहीं निकला, जो हमारे पूर्वजों की परंपरा है, धरोहर है। आज साम्प्रदायिक जहर चारों तरफ व्याप्त हो गया है और उसका ठेकेदार योगी भैरवानंद कहता है कि ताजिया नहीं निकलेगा। कल कोई मुल्ला, मौलवी या बुखारी कहता है कि होली नहीं मनाया जाएगा तो क्या होली नहीं मनायी जाएगी।

भारत की आत्मा में अनेकता में एकता बसती है। इन पोंगा–पंडितों, कठमुल्लों एवं देश को बेचन वाले गद्दार नेताओं के कहने पर देश नहीं चलता है। देश चलता है अपनी परंपरा एवं संस्कृति के साथ कदम–से–कदम मिला कर...।"

'गोधूलि' महानगरीय मध्यमवर्गीय परिवार के टूटन और दर्द की कहानी है। न्यूक्लियर परिवार के इस दौर में बेसहारा छोड़ दिए गए सेवानिवृत्त अमरकांत की कहानी है। भावनात्मक एकाकीपन को हमारी संवेदना से जोड़ पाने में लेखक सफल हुआ है। इसे उषा प्रियंवदा की 'वापसी' कहानी का भाग दो कह सकते हैं। वापसी कहानी में गजाधर बाबू दूसरी नौकरी पर लौट पड़ते हैं लेकिन 'गोधूलि' कहानी के अमरकांत सामाजिक व्यवस्थाओं का प्रतिकार करते नजर आते हैं। वे दूसरी शादी की ओर लौट पड़ते हैं और निर्मला नाम की कॉलगर्ल से शादी करने को तैयार हो जाते हैं जिससे मिलने वे कभी जाया करते थे। इस कहानी में लेखक ने अकेलेपन के दर्द की संवेदना को चित्रित करते हुए कॉलगर्ल को भी सम्मान का दर्जा दिलाया है और कॉलगर्ल के साथ संबंध रखने के घृणित कार्य के उपरांत भी गजाधर बाबू करुणा के पात्रा बन जाते हैं।

'प्रेम डूबै सो उबरै' कहानी 'लिव इन रिलेशनशिप' को केन्द्र में रख कर लिखी गयी है। वर्तमान में 'लिव इन रिलेशनशिप' विमर्श का विषय है। नयी कहानियों में इसके दुष्प्रभाव को ही ज्यादा प्रमुखता दी गयी है। समाज में इसके उदाहरण भी हम देखते हैं, परन्तु लेखक ने इसे विवाह का जामा पहनाकर इसके सकारात्मक पहलू को दर्शाया है।

विवेच्य कहानी संग्रह में आदित्य अभिनव जी ने बदलते समाज और परिवेश से अनेक विविधतापूर्ण छवियों को चित्रित किया है। इनकी कहानियों में जीवन की असलियत है जिसमें जमीनी यथार्थ से कथ्य के अंकुर फूटे हैं। संग्रह की कहानियों में गाँव और शहर के जीवन को समानता एवं समरसता से सिरजा है। लेखक ने जिन चरित्रा और परिवेश को रचा है उसकी आत्मा में घुस गए हैं, जिसके कारण इनकी कहानियों का कारुणिक पक्ष ज्यादा मजबूत हुआ है। इनकी कहानियों का फलक जितना विस्तीर्ण है उसका कहन उतना ही आत्मीय है। वे चमत्कारिक कथ्य के बजाय जीवन में घटित साधारण से साधारण घटनाओं में असाधारण पहचान की खोज करते हैं जो इनकी कहानियों की मार्मिकता का रहस्य है। कहानी के संदर्भ में विश्व प्रसिद्ध कहानीकार एडगर एलेन पो का विचार है कि 'कहानी की एक ही भावभूमि होनी चाहिए और उसका हर वाक्य यह भावभूमि निर्मित करते होना चाहिए।' संग्रह की कहानियों को देखते हुए यह कथन अत्यंत समीचीन प्रतीत होता है जिसके कारण कहानी कहीं भी बोझिल नहीं हुई है। इसमें पठनीयता का प्रवाह बना रहता है। लेखक की एक विशेषता यह भी दृष्टिगत होती है कि किसी बात को कहने के साथ–साथ भावनात्मक परिवेश निर्मित करने में सफल रहे हैं, जिससे कहानियों की मार्मिकता और बढ़ गयी है।

निष्कर्षत: आदित्य अभिनव संग्रह की इन कहानियों में रिश्तों की तरलता और वर्तमान की जटिलता से निर्मित होते नये यथार्थ की पहचान कर कथ्य में ढालने में सफल हुए हैं। इनकी कहानियों में कहीं किन्नर के प्रति करुणा है तो कहीं अभाव की भट्ठी में दहकते गाँव की मार्मिकता। नारी अंतर्विरोधों की दास्ताँ में सूनी गोद की लालसा है तो कहीं संतान के दुर्व्यवहार से आहत माँ की ममता की मर्मव्यथा तथा पति के रहते प्रेमी की ओर बढ़ते कदम। इसमें कहीं संयुक्त परिवारों का दरकता स्वरूप तो कहीं न्यूक्लियर फेमिली में वृद्धों के एकाकीपन की पीड़ा। संग्रह साम्प्रदायिक सौहार्द निर्मित करते हुए गंगा–जमुनी संस्कृति

और परंपरा को स्थापित करता है तो कहीं आधुनिक मूल्यों से उपजे आजीविका की महत्वाकांक्षा और अहं की अंधी दौड़ दौड़ते इंसान की विनाशलीला। कुल मिलाकर इनकी कहानियों का विषय वैविध्य व्यापक है जिसकी सच्चाई से पड़ताल कर कठोर यथार्थ को रखने का कार्य कुशलता से किया गया है जो नित बनती–बिगड़ती दुनिया से हमारा साक्षात्कार कराती है। आत्मीयता, रोचकता, मार्मिकता तथा करुणा इनकी कहानियों की विशेषता है। आदित्य अभिनव की कहानियों का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि इन्होंने चमत्कारिक कहानियों की भीड़ में असली कहानियों के साथ उपस्थित हैं। यह संग्रह न केवल पाठकों का स्नेह प्राप्त करेगा बल्कि उनके भविष्य के लिए मील का पत्थर साबित होगा।

गौरीशंकर वैश्य विनम्र
आदिलनगर, विकासनगर, लखनऊ
दूरभाष 09956087585

योग प्राचीन भारतीय परम्परा एवं संस्कृति की अमूल्य देन है। योग अभ्यास शरीर, मन, विचार, सद्भाव, कर्म, आत्मसंयम, पूर्णता की एकात्मकता को विकसित एवं संतुलित करता है तथा मानव एवं प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करता है। योग केवल व्यायाम नहीं है, अपितु स्वयं के साथ विश्व के स्वास्थ्य एवं कल्याण का संबंध बनाने वाला दृष्टिकोण है।

योग पद्धति के सूत्रधार महर्षि पतंजलि को माना जाता है। योग एक ऐसी पद्धति है, जिसके माध्यम से शरीर. मन और आत्मा के मध्य संतुलन स्थापित किया जाता है। योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द 'युज' से हुई है, जिसके दो अर्थ हैं – एक अर्थ 'जोड़ना' और दूसरा अर्थ है–अनुशासन। योग के अभ्यास से शरीर और मस्तिष्क के बीच एक संबंध बन जाता है, जिससे मस्तिष्क अनुशासित रहता है। योग सदैव स्वस्थ जीवन जीने का विज्ञान है। यह एक निःशुल्क औषधि के समान है, जो हमारे शरीर के अंगों के कार्यों के करने के ढंग को नियमित करती है। इससे विभिन्न बीमारियाँ ठीक होती हैं तथा शरीर नीरोग रहता है।

वर्तमान समय में योग योग वास्तव में जीवन की एक कला है। यह आज की आवश्यकता के अनुरूप प्रासंगिक है। आजकल योग अधिक लोकप्रिय हो गया है, भागदौड़ भरी दिनचर्या में बढ़ते तनाव का निदान योग में ही निहित है। योग का वैज्ञानिक और व्यवस्थित परिणाम शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के सुधार से प्राप्त किया जा सकता है। आधुनिक जीवन–शैली में व्यस्तता और असंतुष्टि का भाव व्याप्त है। यह अनियमित भोजन की आदतों, नींद का अभाव, लंबे समय तक काम, सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग, इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं का बढ़ता प्रयोग, दूषित पर्यावरण आदि के कारण है। नई पीढ़ी के बच्चे एवं वयस्क स्वस्थ जीवन शक्ति, शारीरिक लचीलापन, ऊर्जा और रोगों के लिए समग्र प्रतिरोधक क्षमता खोज रहे हैं।

योग प्रक्रिया योग की प्रक्रिया आसन से आरम्भ होती है। इससे पूर्व यम तथा नियम करने से मन से परिशुद्ध होना पड़ता है। प्राणायाम, अनुलोम – विलोम की प्रक्रिया का सुव्यवस्थित रूप है। इसके नियमित अभ्यास से श्वसन की प्रक्रिया सामान्य रहती है और मुख, नाक और फेफड़ों पर अपना नियंत्रण बढ़ता है। पूरक, रेचक तथा कुम्भक को अपनी साधना का मूल बनाकर शरीर और मन को स्वस्थ बनाए रखा जा सकता है।

योग के लाभ योग से शरीर और मन नीरोग रहता है। इसके विभिन्न आसन और प्राणायाम से हमारा शरीर मजबूत बनता है। प्राणायाम से हमारी श्वसन प्रणाली मजबूत बनती है। अनुलोम – विलोम, कपालभाति जैसी क्रियाओं से शरीर में प्राणवायु (आक्सीजन) की मात्रा बढ़ती है, इससे अस्थमा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप एवं कैंसर रोग नहीं होते हैं। योग क्रियाओं से मानसिक चिंता, तनाव, भय, अवसाद बेचैनी, उन्माद, क्रोध, ईर्ष्या इत्यादि विकारों से मुक्ति मिलती है। इससे मानसिक विकास पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। शारीरिक प्रतिरोधक क्षमता बढ़ने से हम विषाणुओं से लड़ते हैं, जो हमें शरीर को रोगों से छुटकारा दिलाता है। ध्यान करने से मन एकदम शांत होकर तनावरहित हो जाता है।

योग से सम्पूर्ण लाभ पाने के लिए फास्टफूड, जंकफूड तथा बाहरी आहार से दूरी बनाकर अपने परम्परागत और सात्विक आहार को अपनाएँ। ऐसा सात्विक आहार लेना चाहिए, जिससे शरीर के लिए आवश्यक सभी प्रकार के खनिज तत्त्व, प्रोटीन, विटामिन और पोषक तत्त्व पूरी मात्रा में मिलें। आहार ऋतुओं के अनुसार ताजा और हल्का लेना चाहिए। योग क्रियाएँ करने से पूर्व योगासनों की क्रिया – विधि किसी योग्य योग प्रशिक्षक से अवश्य ले लें। गलत तरीकों से योग करने से पूरा लाभ नहीं मिलता है, बाद में शरीर को नुकसान भी पहुँच सकता है।

योग भारत की विश्व को अमूल्य देन योग का इतिहास 5000 वर्ष पुराना है। पश्चिम के लोग योग से परिचित तब हुए, जब स्वामी विवेकानंद ने शिकागो यात्रा के बीच योग के महत्त्व के बारे में बताया। इसके बाद योग के प्रचार–प्रसार में कई योग गुरुओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। आज पश्चिम में योग की लोकप्रियता बढ़ रही है। भारत और विश्व में योग के प्रचार– प्रसार एवं उसे लोकप्रिय बनाने और सभी लोगों के लिए योग – शिक्षा उपलब्ध कराने का श्रेय बाबा रामदेव को जाता है। वे अपने योग शिविरों के माध्यम से योग महत्त्व को विदेशों में भी जन – जन तक पहुँचाने का कार्य रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस

11 दिसंबर, 2014 को माननीय प्रधानमंत्री मोदी के प्रयासों से संयुक्त राष्ट्र में 177 सदस्यों द्वारा 21 जून को 'अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस' मनाने की स्वीकृति मिली। 21 जून, 2015 को विश्व का पहला योग दिवस विश्व के 191 देशों में मनाया गया। भारत का मुख्य कार्यक्रम दिल्ली के राजपथ पर प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में हुआ. जिसमें 80 देशों के 37,000 लोगों ने एक साथ राजपथ पर योग किया। यह योग कार्यक्रम 'गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड' में दर्ज हो गया। भारत ने इस अवसर पर विशेष डाक टिकट जारी किया तथा 100 रुपये और 10 रुपये के सिक्के जारी किये गए। वर्ष 2016 में भारत की अमूल्य निधि योग को 'मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक धरोहरों की प्रतिनिधि सूची' में सम्मिलित किया गया और इस प्रकार भारतीय योग वैश्विक धरोहर बन गया। अब प्रतिवर्ष योग दिवस मनाने का यह क्रम लगातार जारी है। वर्ष 2025 में 21 जून को 11वें अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस की भावभूमि है – "एक पृथ्वी, एक स्वास्थ्य के लिए योग"।

योग राष्ट्रीय एकता एवं विश्व बंधुत्व की भावना का सूत्रधार

योग विश्व बंधुत्व की भावना तथा राष्ट्रीय एकता का सूत्रधार बन कर देश – देशान्तर का कल्याण कर रहा है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक, तो हिमालय की ऊँची चोटियों से लेकर धूप में तपते रेगिस्तान तक योग की सुगन्ध फैली है। हम योगमय होकर राष्ट्रमय हो रहे हैं। इससे सामाजिकता, समानता और सामुदायिकता की भावना को बल मिलता है। हम अपनी राष्ट्रीयता पर गर्व करते हैं और अपनी संस्कृति पर गौरवान्वित होते हैं। योग स्वास्थ्य एवं समृद्धि भी प्रदान कर रहा है। योग के क्षेत्र में अनेक योग गुरुओं को जिम एवं पार्क में प्रशिक्षण देने के सुअवसर मिल रहे हैं। इस प्रकार योग आजीविका प्रदान करने में भी सहायक है।

अस्तु, योग के अनगिनत लाभ हैं। आज योग के माध्यम से लोग अनेक उन रोगों पर विजय प्राप्त कर रहे हैं, जिनका वर्तमान चिकित्सा पद्धति में कोई इलाज संभव नहीं है। रोगों की रोकथाम के साथ आजीवन स्वास्थ्य लाभ पाने के लिए आज योग मनुष्य की आवश्यकता बन गया है। बच्चे से लेकर बड़ों तक को योग करने के लिए प्रतिदिन विशेषतः प्रातःकाल में कम से कम 15 से 30 मिनट का समय अवश्य निकालना चाहिए।

समीक्षा

कस्बाई संस्कृति से जुड़ा उपन्यासः किसी शहर में

सन्तोष मोहन्ती 'दीप'
अहिल्यानगर एक्सटेंशन,
अन्नपूर्णा रोड, इंदौर (म.प्र.),
मोबाइल– 9425957064

साहित्य की विविध विधाओं में व्यंग्य का एक महत्वपूर्ण स्थान है। व्यंग्य विधा के द्वारा व्यवस्था पर जबरदस्त प्रहार होता है जो पाठक के मन में गहरा प्रभाव छोड़ जाता है। इस विशेष शैली में लेखक अपनी बात को बड़ी ही सहजता से कुछ इस अंदाज में कह जाता है जो सामान्य जनमानस को झकझोर के रख देता है तथा साथ में सोचने के लिए, चिंतन के लिए भी विवश कर देता है। इस लेखन विधा में एक सशक्त संदेश भी निहित होता है जो समाज में एक सकारात्मक परिवर्तन की अपेक्षा भी रखता है। व्यंग्य की इस विधा में हिन्दी साहित्य में कई पुरोधा हुए हैं जिन्होंने अपने लेखों से, अपनी रचनाओं से साहित्य को समृद्ध किया है तथा अपनी बात भी बड़ी ही मजबूती के साथ रखी है, एक उन्नत विचार को मनन करने के लिए छोड़ा है। वैसे तो इनकी एक लंबी सूची है पर मुख्यतः इनमें शरद जोशी, हरिशंकर परसाई, ज्ञान चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं। प्रेमचंद ने भी अपनी रचनाओं में व्यंग्य को स्थान दिया है। डॉ. अनंत श्रीमाली (अब स्मृति शेष) ने भी वर्तमान युग में अपनी व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से व्यवस्था पर गहरी चोट की है। वर्तमान में अश्विनी कुमार दुबे ने भी इस विधा में खूब कलम चलायी है तथा व्यंग्यकारों में एक विशेष स्थान प्राप्त किया हुआ है। उनके ही द्वारा लिखा गया एक व्यंग्यात्मक उपन्यास 'किसी शहर में' को पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। इस उपन्यास को मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी का वर्ष 2019 का प्रतिष्ठित पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

यह उपन्यास एक कस्बाई संस्कृति को ओढ़े हुए छोटे शहर में निवासरत एक मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है जिसे हर कदम पर परेशानियों का सामना करना पड़ता है। इसमें एक नया प्रांत बनने पर पुराने प्रांत का बँटवारा होता है एवं फिर तबादलों का धन्धा चल उठता है। इस विशेष अवधि में तबादलों एवं विकास के नाम पर हो रही धाँधली एवं घोटालों पर लेखक की बड़ी ही पैनी एवं तीखी व्यंग्यात्मक लेखनी चली है जिसने व्याप्त व्यवस्था की पोल ही खोलकर रख दी है। इस प्रांत के बँटवारे में उपन्यास का मुख्य पात्र देवदत्त अपने गृहनगर हरबोंगपुर जाने का मन बनाता है जहाँ पर उसका पैतृक मकान है जो अब उसके पिता के द्वारा एक दूर के रिश्तेदार को किराए पर दिया हुआ है। वह किराएदार एक रसूख वाला राजनैतिक प्रवृत्ति का साम–दाम–दंड के सिद्धांत को प्रतिपादित करने वाला व्यक्ति है। देवदत्त को इस उपन्यास में एक आम मध्यमवर्गीय व्यक्ति के रूप में बताया गया है जो साधारण जीवन सादगी से जीने में विश्वास रखता है। जिसके व्यक्तित्व में ईमानदारी है, सच्चाई है एवं एक भोलापन है। वह अपने जैसे ही सारे जगत को समझता है और यहीं पर उससे यह भूल हो जाती है। उसे अपने उस पैतृक मकान को खाली कराने में इतनी अधिक परेशानियों का सामना करना पड़ता है कि कई बार वह टूटता है, बिखरता है फिर स्वयं ही उठता है पुनः अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए। इस दौरान कई प्रकार के घटनाक्रम का होना बताया गया है जिसमें चरमराती हुई व्यवस्था, भ्रष्टाचार का विकृत चेहरा, राजनीतिक दोगलापन का मुखौटा एवं दम तोड़ती, कराहती हुई मानवता को बड़े ही सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया गया है।

इस उपन्यास में तीव्र गति के साथ घटते हुए घटनाक्रम हैं जो पाठक को बाँधे रखते हैं। इन घटनाक्रमों की श्रृंखलाओं में समाज में व्याप्त, अपनी धाक जमाए समस्त व्यवस्थाओं का अति सहजता के साथ उल्लेख किया गया है और वह भी अति व्यंग्यात्मक शैली में जो मानस मन में अपना गहरा प्रभाव छोड़ते जाता है। उपन्यास में पात्रों का आपस में संवाद भी कई बार अत्यंत ही चुटीली शैली में प्रस्तुत किया गया है जो रोचकता के साथ सजगता के भाव निर्मित करता है। एक कस्बाई वातावरण को अति गहनता एवं गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया गया है एवं इसमें लगभग समस्त पहलुओं एवं पक्षों को समावेशित अत्यंत ही सहजता से कर लिया गया है। लेखक ने समाज में व्याप्त व्यवस्था पर गहराई से विस्तृतता के साथ अपनी बात कही है। इस बात का भी अंदाजा हो जाता है कि समस्त व्यवस्थाओं के बारे में लेखक ने विस्तृत अध्ययन किया है, इसके गहन ज्ञान को दर्शाया भी गया है चाहे वह कानूनी प्रक्रिया की लम्बी लड़ाई हो, अथवा कार्यालयों में व्याप्त विशेष भ्रष्ट व्यवस्था हो, सभी पर विस्तार से कलम चलायी है। दूषित राजनीति, भ्रष्टाचार, गुंडागर्दी, स्वार्थपरता, कानूनी दाँव–पेंच, कोर्ट–कचहरी का पेचीदापन, धूर्तता इन सभी के मध्य में सच्चाई एवं ईमानदारी को परेशान होते हुए एवं संघर्ष करते हुए दिखाया गया है। कई बार इन विद्रूपताओं में घिरकर सच्चाई दम तोड़ती हुई प्रतीत होती है। बुरे एवं स्वार्थपरत लोगों का वर्चस्व बढ़ता हुआ दिखता है। मन का अन्तर्द्वन्द्व आपस में उलझता हुआ–सा लगता है जिसमें बुराई कभी हावी हो जाती है तो कभी नकारात्मकता जड़ें जमाने लगती है परन्तु अंततः हर बार अच्छाई एवं सच्चाई ही उभरकर सामने आती है। यही इस उपन्यास की विशेषता है। कहते हैं कि सत्य परेशान हो सकता है पराजित नहीं और यही तथ्य इस उपन्यास के अंत में प्रतिपादित हो जाता है।

लेखक की भाषा शैली अत्यंत ही सरल है जो पाठक को बाँधे रखती है। घटनाक्रमों का उल्लेख एक के बाद एक इस प्रकार किया गया है कि मन–मस्तिष्क को तीव्रता के साथ गतिमान हो जाना पड़ता है। कथावस्तु एवं कथानक वर्तमान काल के परिपेक्ष में प्रासंगिक है तथा व्यवस्था की मलिनता एवं धूर्तता पर ठोस प्रहार भी है। पाठक जब इस उपन्यास से बाहर निकलकर आता है तो मन में संतोष का भाव निर्मित हो चुका होता है। जैसे उसने स्वयं एक संघर्षपूर्ण जीवन जी लिया हो एवं अंत में सज्जनता एवं सत्य ने विजय प्राप्त कर ली हो। इसी कारणवश यह उपन्यास व्यंग्य साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाने की क्षमता रखता है। लेखक श्री अश्विनी दुबे जी को ऐसी विषयवस्तु एवं उद्देश्यपूर्ण लेखन के लिए बधाई। उनका लेखन निरंतर चलता रहे एवं साहित्य जगत को समृद्ध करता रहे यही शुभकामनाएँ मैं देता हूँ। पूर्व में भी उनका एक उपन्यास स्वप्नदर्शी पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है जो भारत के प्रसिद्ध इंजीनियर श्री विश्वेश्वरैया जी के जीवन पर आधारित है। उनकी लेखन शैली अत्यंत ही प्रभावशाली है।

पुस्तक हार्ड–बाउंड में नेशनल पेपरबैक्स, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित किया गया है जिसका मुखपृष्ठ प्रभावित कर जाता है जो इस उपन्यास की कथावस्तु को प्रतिबिम्बित कर रहा है। कुल मिलाकर इस पुस्तक का स्वरूप आकर्षक है एवं अपनी छाप छोड़ रहा है।

अश्विनी कुमार दुबे, व्यंग्य उपन्यास– किसी शहर में, प्रकाशन– नेशनल पेपर बैक, नई दिल्ली

समीक्षा

'दीनू और कौवे' के लक्ष्य को भेदती कविताएँ

विजय कुमार तिवारी
भुवनेश्वर, उड़ीसा,
मोबाइल—9102939190

किसी रचनाकार के भीतर कोई आलोक उभरता है, मन हुलसित होता है और उद्गार स्वतः प्रवाहित होने लगता है। कोई चित्रकार बनता है, कोई कलाकार, कोई कवि और साहित्यकार। सभी अपने—अपने तरीके से दुनिया को खूबसूरत बनाना चाहते हैं और यही लोग दुनिया की खूबसूरती को समझ पाते हैं, पहचान पाते हैं। ये ही लोग विसंगतियों को देख पाते हैं, विद्रूपताओं पर अंगुली रख देते हैं और हमारे अन्तर्विरोधों का खुलासा करते हैं। कवि का संघर्ष वहीं से शुरू होता है और वह नयी—नयी भाषा, नयी शब्दावली, नये मुहावरे गढ़ता चलता है। मनुष्य की पीड़ा, मनुष्य का संघर्ष और उसकी खुशियाँ कवि के लिए प्राण—तत्व हैं।

चर्चित व प्रतिष्ठित कवि, गजलकार, लेखक और साहित्यकार श्री फूलचंद गुप्ता जी ने बहुत सी पुस्तकों का सृजन किया है, उन्हीं में से एक काव्य संग्रह 'दीनू और कौवे' मेरे सामने है। इस संग्रह का प्रथम संस्करण 2012 में छपा और तब से पुस्तकाकार ये कविताएँ पाठकों को रोमांचित और आंदोलित कर रही हैं। यह विचित्र संयोग ही है, इस संग्रह में न तो कवि ने अपनी ओर से कोई वक्तव्य दिया है और न ही किसी विद्वान लेखक/आलोचक/समीक्षक का इन कविताओं पर कोई आलेख ही है। यह एक तरह से श्री फूलचंद गुप्ता जी का साहस ही माना जाना चाहिए क्योंकि अक्सर लोग कुछ बातें पृष्ठभूमि या भूमिका के तौर पर लिखते हैं। पाठकों, समीक्षकों को उसका लाभ मिलता है। शायद कवि ने हम सब पाठकों को चुनौती दी है। उनके इस अंदाज तथा साहस की सराहना करता हूँ और उनके काव्य—सागर के मोती, कंकड़—पत्थर या हीरे—जवाहरात, जो कुछ है, जितना समझ पाऊँगा, ढूँढने, खोजने का प्रयास करता हूँ।

श्री फूलचंद गुप्ता जी उद्घोष करते हैं, उनका उद्घोष सामान्य हुंकार नहीं है, वे खुलकर, सम्पूर्ण विश्वास के साथ स्वयं को परिभाषित करते हैं, अपनी मूल प्रवृत्ति, मूल तत्व का संकेत करते हैं, कहते हैं कि मैं पैर नहीं बल्कि पैरों में जो गति होती है, वह गति हूँ, मैं जिह्वा नहीं, जिह्वा के माध्यम से जो भाषा प्रस्फुटित होती है, वह भाषा हूँ, हाथों की अंगुली से जो सृजन होता है, मैं वह रचना हूँ और आँखों में जगमगाती हुई आशा हूँ—

मैं पैर नहीं, पैरों में गति हूँ
मैं जिह्वा में, झरती भाषा हूँ
मैं रचना हूँ, कर की अंगुली में
आँखों में, मैं जगमग आशा हूँ

कविता संग्रह 'दीनू और कौवे' में छोटी—बड़ी कुल 57 कविताएँ हैं जो कवि के संघर्षो और पीड़ा की अनुभूतियों से भरी हुई हैं। कवि को पता है कि ये वही हत्यारे हैं जो किसी योजना के तहत आए थे, लोगों की हत्याएँ कीं, फिर शांत हो गए। दशकों तक किसी की हत्या नहीं हुई, वे खून—खराबा करना भूल गए हैं और चाहते हैं कि सभी लोग भूल जाएँ खून—खराबा करना। सभी शान्ति की बातें करें, विकास की बातें करें और सद्भावना की बातें करें। वैसे भी एक बार का किया हुआ विनाश बहुत होता है, सदियों तक कोई विरोधी स्वर नहीं उठा सकता। कविता को थोड़ा मुखर होना था, आखिर वे हत्यारे कौन थे। 'जीवन—ऊष्मा' की पंक्ति बहुत सुन्दर है, "यह दुनिया जीने लायक है।" यह सचमुच अद्भुत अनुभूति है। गर्म हथेली है, निश्चित ही वहाँ जीवन है, जीवन की ऊष्मा है। कवि चिन्तन करता है क्योंकि वहाँ कुछ और भी संभावनाएँ हैं, शायद कुछ आपत्तिजनक स्थितियाँ हैं, विसंगतियाँ हैं, फिर महसूस करता है यह दुनिया रहने और जीने लायक है।

'सरकारी नौकरी' की तुलना काष्ठ की उस नाव से की जा रही है जो सागर तट पर लंगर से बँधी है। कवि को ज्ञात है, यदि नाव बँधी नहीं होती तो दूर—दूर तक यात्राएँ करती, संघर्ष करती, लहरों से, हिम—शिलाओं से टकराती और नौका होने का उद्देश्य पूर्ण करती। बँधी हुई नौका को हारी हुई या पराजित मान लिया जाएगा—

मुझ जैसी नावों को
बिना लड़े ही
पराजित बताया जाएगा।

'सौदा' कविता में त्रासदी देखिए— हमने लोगों को बचाने, जीवित रखने के लिए खून दिया और उन्होंने उन्हीं भेड़ियों से सौदा कर लिया। हमारी जनता, हमारी व्यवस्था और हिंसक लोगों के भीतर की साठ—गांठ पर छोटी—सी कविता यथार्थ बयान करती है। 'राजपथ' कविता में कवि निर्देश देता है कि राजपथ पर मत चलो क्योंकि ये सड़कें हमें—तुम्हें या तो गहरी खाईयों में गिरा देंगी या खंजर की तरह पसलियों में उतर जाएँगी। हर स्थिति में हमारा विनाश ही होना है।

गुप्ता जी कुछ दूसरी तरह से साहस दिखाते हैं, दिखाते नहीं बल्कि उनमें स्थायी भाव में वह है और समय आने पर स्वतः उभर आता है। इसे कवि द्वारा संघर्ष की तैयारी भी कह सकते हैं। वह शुरू से दुनिया को समझता और उसी के अनुरूप अपने पास लड़ने के हथियार संजोता चलता है। 'मत कहो' में जीवन की सच्चाई बताते हुए कहना अद्भुत है— मुँह यदि/ लम्बे समय तक/ बन्द करके रखा जाए तो/ दाँतों में/ बहुत ही तेज/ विष उतर आता है। कवि इस बिम्ब के माध्यम से जो कहना चाहता है, कह ही देता है। एक तरफ हथियार बंद शक्तिशाली सैनिक और दूसरी ओर अनभ्यस्त, निहत्थे, गुलाम। साहस ही है कि ऐसी बेमेल परिस्थिति में भी कवि अपनी बात पुरजोर तरीके से कहता है—

मत कहो
हम
कुछ नहीं कर सकते।

उसी तरह से कविता 'घृणा—प्यार' को देखिए, अलग से कुछ भी समझाने की आवश्यकता नहीं है। कविता की पंक्तियाँ स्वयं अपनी ऊर्जा और यथार्थ बताती हैं— हम लड़ते हैं/ इसलिए कि/ हमें युद्ध से घृणा है/ हम मरते हैं/ इसलिए कि/ हमें जीवन से प्यार है।

'सबूत' में कवि अलग चित्र खींचता है। एक ओर सब कुछ लावारिस है, रंग, चमड़ी, खून सब भिन्न है जबकि कहा जाता है, सबकी रगों में एक ही तरह का रुधिर बहता है। कवि उनके जुलूस में कैसे शामिल हो? कवि एक—एक चीज गिनवाता है वह भी बड़े भयावह और कटु शब्दों में— मैं जो खाता हूँ/ तुम्हें उससे घृणा है/ मैं जो पहनता हूँ/ वह तुम्हारे लिए चिथड़ा है/ मेरा घर/ तुम्हारे लिए लावारिस घूर है/ मेरा आचरण तुम्हारी नजर में/ किसी विक्षिप्त मस्तिष्क का एकालाप है। कवि बहुत ही तरीके से अपनी पीड़ा बताता है— तुम आदमी होने का दावा करते हो/ और/ मेरे पास आदमी होने का कोई सबूत नहीं है। कवि अपनी कविताओं में उस वर्ग की आवाज को बुलंद करना चाहता है जिसके पास

ब्रह्मास्त्र तो है परन्तु चलाना नहीं आता। फिर भी आत्म–विश्वास देखिए— हमें इसे चलाना सीख लेने दो/ फिर हम बताएँगे/ हम जो दिखते हैं/ वही नहीं, कुछ और हैं। 'आत्म–मोह' अच्छी व्यंग्य करती वैसे लोगों पर कविता है जो अपनी पहचान खोकर प्रशस्ति में लग गए हैं, अपनी पहचान, गौरव आत्म–सम्मान खो चुके हैं। उसका कारण है, सस्ती मालाओं की गंध जिसे धारण करके आत्म–मोह के शिकार हुए हैं और अपनी मूल चेतना, आभा सब खा गए हैं।
'सबसे अच्छा रास्ता' अच्छी व्यंग्य कविता है जिसमें अन्तर्विरोधों, परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। 'शासक' कविता में आज के बदलते हुए हालात का भयावह चित्र है। सब कुछ बदल रहा है, जो श्रेष्ठ है, कुरूप में, जो जीवन्त है, मृत्यु में, छलकता तालाब सूख रहा है, चरागाहों में भरपेट भोजन नहीं है, जानवर मर रहे हैं और नगर का नागरिक सोया हुआ है, उसे कहीं जाने की जल्दी नहीं है। 'मध्यम वर्गीय मनुष्य' की सचमुच ऐसी ही दशा है। श्री फूलचंद गुप्ता जी ने इस वर्ग की सच्चाई व्यक्त की है। वर्गों में, जातियों और धर्मों में बँटा हमारा समाज आप ही एक–दूसरे को चोटिल और तबाह करता है। उसी का लाभ उठाकर लोग बाँटते जाते हैं और शासन करते हैं।
'मैं क्रोधित हूँ' जैसी कविता को आधार बनाकर गुप्ता जी ने सर्प के माध्यम से समाज के दुश्मन की पहचान की है। उससे संबंधित खतरों की सम्पूर्ण स्थितियों–परिस्थितियों में लोग अलग–अलग व्यवहार करते हैं और सावधान नहीं होते। कवि ऐसे लोगों पर अपना क्रोध व्यक्त करता है। हमें डँसने, धोखा देने और हानि देने वाले लोगों से सावधान होना चाहिए। कवि सर्प से अधिक उन लोगों पर क्रोधित होता है जिनका पाला किसी भी रूप में सर्प से पड़ता है।
'संघर्षों के मूल सनातन' कविता में हमारी धरती, हमारे आकाश और वातावरण में परस्पर विरोधी तत्वों की उपस्थिति की बातें की गयी हैं। इस परम सत्य को गुप्ता जी पहचान कर संदेश देते हैं— शांति में नहीं/ निरंतर विरोधाभासों में/ गतिमान होती है धरती।
'कहाँ बसती है अहमदाबाद की आत्मा' फूलचंद गुप्ता की मार्मिक और संवेदनशील कविता है। कवि के मन में बचपन में हुए विस्थापन की पीड़ा की गहरी अनुभूति है। वह अपने तरीके से अहमदाबाद की आत्मा की तलाश करते हैं। शहर के बनते–बिगड़ते स्वरूपों में, चकाचौंध में, मन्दिर में, मस्जिद में, अल्लाह में, राम में, धनिकों में, गरीबों में, सुन्दरियों में सब जगह खोजते हैं। अंत में निराश होते हैं कि ऐसे आत्मा रहित शहर में उनके पिता उठा लाए थे। इस कविता के माध्यम से कवि उन तमाम शहरों की आत्माओं को खोजना चाहता है जहाँ लोग विस्थापित होकर आ बसते हैं।
'शहर में कर्फ्यू' कविता में कर्फ्यू के कठिन समय के उन सारे पात्रों को चित्रित किया गया है जो जाने–अनजाने शिकार करते हैं या शिकार होते हैं। समीकरण बनाने वाले दूसरे होते हैं परन्तु सजा आम लोगों को भोगनी पड़ती है। साधारण जन को हिंसा, दु:ख और षड्यन्त्रों का शिकार होना पड़ता है—

आग कोई और बोता है
आग में झुलसता कोई और है।

'स्वप्न–सुख' अलग तरह की सच्चाई की रचना है। हमारे पास जो भी सीमित साधन हैं, हम उनसे अपने जरूरी सामान ले सकते हैं जैसे बच्चों के लिए टॉफियाँ, घर के लिए सब्जी या दोस्तों के लिए चाय की प्यालियाँ। यह हमारी संवेदना और खुशी के कुछ बिम्ब हैं। वह सट्टे की रसीद लिया है और खुश है— अब वह खुश है/ बेखटके/ अब उसकी जेबें/ ख्वाबों से भरी हुई हैं।
'दस तारीख के पहले वाली रात' बच्चों और मंगू पति–पत्नी को अपने–अपने कारणों से नींद नहीं आने वाली है। कर्ज के बोझ में दबे मजदूर परिवार की यही स्थिति है। गुप्ता जी ऐसे लोगों की मार्मिक पीड़ा को शब्द देते हैं और सत्य चित्रण करते हैं। 'दिसम्बर का महीना' मंगू जैसे गरीब के लिए किसी त्रासदी की तरह है। वह ठंड से बचने के लिए रजाई या कपड़े लेने को सोचता है परन्तु हालात इतने बुरे हैं कि ले नहीं पाता और सोचता है कि अगले साल अवश्य ले लेगा। फूलचन्द गुप्ता जी गरीबी और गरीबों के मनोविज्ञान को खूब समझते हैं और यथार्थ दृश्य प्रस्तुत करते हैं। 'जौहर' कविता में विस्थापन का दंश पीढ़ियाँ भोगती हैं। गरीबी ऐसी कि कोई सुख नहीं, खाना बनाना, सोना, नौकरी करना और सालों बाद घर जाना—

जौहर की तरह जौहर का बेटा भी
पन्द्रह का आएगा
साठ का जाएगा।

कवि ने इस त्रासदी के दंश को बहुत करीब से देखा है। सदियों से करोड़ों गरीबों का ऐसा ही जीवन है।
श्री फूलचंद गुप्ता जी संभावनाओं की ओर अधिक देखते हैं और उनकी कविताएं उम्मीदों से भरी होती हैं। 'बच्चा बढ़ रहा है' ऐसी ही कविता है। 'मौसम बदलेगा' उसी उम्मीद की कविता है— अब खूब विरोध करेगा/ अपने मौसम का/ अब मौसम बदलेगा। 'निर्णय' जैसी और भी कविताएँ हैं जिनके माध्यम से कवि दुनिया को सजग, सचेत करना चाहते हैं कि लड़ाई का पुराना तरीका बदलना होगा। भेड़ियों और उनकी गतिविधियों को समझना सरल नहीं है— आदमी की खाल में/ छिपे हुए भेड़िये/ आकर/ आदमी का रक्त पीते रहते हैं/ और आदमी/ यह जान भी नहीं पाता/ कि उसकी लड़ाई किससे है? कवि की इस बात से कोई असहमत नहीं हो सकता— और तुम्हें/ निर्णय लेना होगा/ कि तुम किस ओर हो।
एक ओर सत्ता या शक्तिशाली लोग होते हैं जो नाना तरीकों से अपनी ही प्रजा पर दमन–चक्र चलाते हैं, कवि उस चेतना के साथ पक्षधरता दिखाते हैं— कहीं लापता हो जाने के बजाय/ हथियार उठा लें/ दीवारें तोड़ने को। कवि आगे लिखते हैं कि तुम कोड़े बरसा सकते हो, मशीनों से रौंद सकते हो, खूंखार कुत्ते छोड़ सकते हो या अँधेरी सुरंगों में कैद कर सकते हो। कवि चुनौती देता है— किन्तु इस तरह तो/ तुम नहीं लगा सकते/ पाबंदी/ हमारी जगी हुई/ चेतना पर। (स्वतन्त्र होते हुए) अगली कविता 'न हो सब कुछ सब के लिए' में कवि व्यवस्था के सामने सीधी बात कहते हैं— न हो सब के लिए सब कुछ/ जरूरत भर/ तुम्हारी व्यवस्था में/ तो उसे तोड़ दो। कवि उद्घोष करता है—

हम अपने लिए
अब नई दुनिया बसाएँगे।

'मेरी हँसी, मेरा रोना' कवि दोनों ही परिस्थितियों में कुछ बेहतर होने की उम्मीद करता है— मेरा रोना/ पत्थरों के प्राणवान होने का सबूत है/ मेरा हँसना गवाह है/ कण–कण में उम्मीदों के होने का। 'ईंट' अस्तित्व के बने रहने की कविता है— बावजूद इसके ईंट/ अब ईंट ही रहेगी/ समूची हो या खण्डित/ ईंट अब मिट्टी में नहीं मिलायी जा सकती। फूलचंद गुप्ता जी ऋषियों/ ब्रह्मचारियों की दुनिया से कविता निकाल लाते हैं और शब्द निर्माण की प्रक्रिया बतलाते हैं—

आदमी शब्द ही नहीं गढ़ता
शब्द भी आदमी बनाते हैं।
—(आदमी और शब्द)

'हर मौसम में' कवि बहुत बारीकी से हर मौसम की स्थितियों/ विसंगतियों का चित्रण करते हैं— हम पर तो/ बारहों मास/ तीसों दिन/ चौबीसों घंटे, टूटे कहर। भले ही हर मौसम में कुछ अच्छा होता हो, कुछ खराब, परन्तु हमारे लिए यानी कमजोर, लाचार के लिए दु:ख ही दु:ख है। 'वह हथियार बना रहा है' मेहनत करने वाले इंसान पर बेजोड़ कविता है। मेहनत करने वाले,

सृजनशील मनुष्य के सामने जितनी बाधाएँ खड़ी करो, वह कोई न कोई मार्ग खोज ही लेता है। आज दुनिया की सारी प्रगति मनुष्य की उसी जिद और लगन का प्रतिफल है वरना सत्ताएँ तो मनुष्य की चमक को कुन्द करने में लगी रहती हैं। 'लड़की' कविता हमारे समाज के घिनौने रूप को दिखाती है। 'पत्थर' कविता में संवेदना, सच्चाई और संकल्प सब कुछ है— वे फूटते हैं/ तो सोता निकलता है/ टूटते हैं तो आग/ जब न टूटते हैं/ तो महाकाय हो जाते हैं/ अपनी पीठ पर/ दरख्तों के दरख्त उठाते हैं।

'हम फिर लौटेंगे' कविता अपनी जड़ों की ओर, उद्‌गम की ओर लौटने की बात करती है और कवि उन शुरुआती दिनों को महत्वपूर्ण समझता है, आज की विकसित दुनिया के बजाय और बड़े तल्ख तेवर में कहता है—

समाज के इस मौजूदा नक्शे को
कब्रिस्तान के हवाले कर
हम लौट आएँगे।

'ताकि आत्महत्याएँ रोकी जा सकें' कविता में कवि के प्रश्न स्वाभाविक हैं, कुछ तो कारण होगा ही कि बनैले सूअरों की दुनिया मैं खरगोश जिन्दा हैं, आज की विज्ञापनी दुनिया में बची हुई हैं महाकवियों की कविताएँ। कुआँ भी है और सन्नाटा भी, फिर भी लोग आत्महत्याएँ नहीं कर रहे हैं। कवि कारणों की तलाश करना चाहता है ताकि कविताएँ लिखी जा सकें, खरगोशों की तादाद बढ़ाई जा सके और रोकी जा सके आत्महत्याएँ। कवि को अपना गाँव हमेशा याद रहता है। माँ शहर आयी है अपने संदूक के साथ जिसके लिए बेटों के मकान में जगह नहीं है। गुप्ता जी ऐसे बिम्बों और कथानकों के माध्यम से गाँव से विस्थापन की पीड़ा की अनुभूति व्यक्त करते हैं। (पुरानी, अनुपयोगी चीजें) 'अब कैसे बचेंगे हमारे अवशेष' कविता में कवि बेचैन है क्योंकि कागज की खपत बढ़ गयी है दुनिया भर में/ बहुत महँगा हो गया है टुकड़ा भर कागज। मानवीय संवेदनाएँ उभरती हैं, अब कोई माँ पैगाम नहीं भेज पाएगी, चंदू कैसे लिखेगा प्रेम पत्र पत्नी के नाम और बच्चे कैसे बनाएँगे कागज की नाव? कवि की बेचैनी है, उसे नींद नहीं आती— चिन्ताओं से अब कौन उबारेगा/ आगामी पीढ़ी को/ कैसे छपेगी अब कोई किताब/ हम कहाँ लिखेंगे अब बेचैन कविताएँ। 'वह आदमी सूरज है' में आज के मनुष्य की बेचैनी, पीड़ा, उसका मौन आदि के बारे में समाज के वीभत्स चिन्तन और अन्तर्विरोधों को कवि ने अच्छी अभिव्यक्ति दी है। 'अब तुम मुझे' कविता में उम्मीदें और आने वाली सुखद स्थितियों के एहसास ने कवि को निर्भय बना दिया है। अब उसे बुरी से बुरी और असह्य भयानक स्थितियों से भय नहीं होता— क्योंकि/ निकट भविष्य में/ आने वाली सुखद स्थितियों के/ महज एहसास ने/ मेरी/ वर्तमान असह्य पीड़ा को/ बेअसर कर दिया है। 'बैलेंस शीट' गूढ़ व्यंग्य की कविता है और समाज में हो रही विद्रुपताओं को यथार्थतः प्रस्तुत करती है। गुप्ता जी उन आंतरिक संघर्षों, पलायन, लूटपाट और हत्याओं सहित सम्पूर्ण संवेगों को पहचानते हैं और अपनी कविता में ढाल देते हैं। कुछ वैसी ही अनुभूति 'अभी थोड़ी देर बाद' या 'लोकतंत्र' कविता के साथ है। साधारण व मध्यम वर्गीय लोगों और बड़े लोगों के बीच हो रहे टकरावों, बनते-बिगड़ते समीकरणों की पहचान फूलचंद गुप्ता जी को है और उनकी कविता में प्रयुक्त शब्द सार्थक हो उठते हैं। वे मेहनत करते हुए व्यक्ति के पक्ष में बेबाकी से स्वीकार करते हैं कि मैं कभी बड़ा आदमी बन जाने का सपना नहीं देख सकता क्योंकि ऐसे सपने देखने की भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। मेहनतकश लोगों को कवि बताना चाहता है— मुझे सख्त जरूरत है/ स्वप्न देखने के पूर्व/ स्वप्न देखने के हक की। कवि को साधारण लोगों के दुश्मनों की खूब पहचान है और उन्हें पता है कि वे नाना रूप धारण करके आते हैं, उनके पास नाना हथकंडे होते हैं, आपस में लड़ा देने की अनेक तरकीबें। 'अंकुर' कविता में पिता-पुत्र संवाद, जिज्ञासा और संवेदना से भरा उत्तर रोचक बन पड़ा है। वैसे ही प्रश्न 'शांति समझौते' में भी हैं।

कवि की कविताओं में असंतोष और विद्रोह के स्वर मुखरित होते हैं जैसे समाधान, सूर्य खत्म नहीं किया जा सकता या यही होना है। कवि के पास पुख्ता कारण हैं और बड़ी सजग भाषा जिससे सत्य उद्‌घाटित होता है। कवि उन सभी लोगों को निडर देखना चाहता है, अपनी ताकत को पहचानता है और अलबत्ता तैयार है, जो होना है, हो जाए। 'पहरेदार' कविता में पीढ़ी-दर-पीढ़ी, अँधेरा होते ही आवाज सुनायी देती है, जागते रहो-जागते रहो। यह स्थिति तब से है— जब से शहर बसा है/ और जब से/ आदमी बना है हथियार/ आदमी को काटने के लिए।

पिता की सीख 'अपने बेटे के लिए' अद्‌भुत यथार्थ चित्रण है। कवि उन पुराने जर्जर कुओं के बिलों में गौरैया को घोंसला बनाते और वहीं रह रहे सर्पों द्वारा शिकार होते देखा है। कवि किसी ऊँची पहाड़ी पर, किसी खुली जगह में ऊँचे पेड़ पर घोंसला बनाने की सीख देता है— इसलिए मेरे बेटे!/ तुम अपना घोंसला/ किसी खुली पहाड़ी पर/ या किसी ऊँचे पेड़ पर बनाना/ अपने/ चूँ चूँ कर रहे बच्चे के मुँह में/ पहला दाना डालने के पहले/ उन्हें/ आसमान तलक उड़ना सिखाना।

'ओ मेरी कविताओं' बड़ी जीवन्त कविता है। कवि सुन्दर-सुन्दर कल्पनाएँ करता है और अपनी कविताओं को तोते की तरह, रोशनी की तरह, मेहनत करती हुई औरतों की जिह्वा पर गीत की तरह या धड़कते दिलों की तरह होने को कहते हैं। कवि के द्वारा प्रस्तुत हर बिम्ब, बदलते हुए रुपों में कभी अपने चेहरे की तरह और कभी उड़ते हुए चेहरे दुश्मन की तरह लगते हैं। अपने पोते-पोतियों को समर्पित 'सूरज दादा' अच्छी बाल कविता है।

'दीनू और कौवे' कविता में दीनानाथ मेहनती इंसान है, कवि का नित्य मिलना-जुलना है। दीनू की लम्बी चुप्पी पर प्रश्न करते ही उसकी आँखें ऊपर उठती हैं— ऐसा लग रहा था/ जैसे कोई जहाज/ जमीन को छोड़कर/ आकाश की ओर/ उड़ता हुआ, उठता हुआ/ चला जा रहा हो।... दीनू की बड़ी-बड़ी रक्तिम आँखें/ जैसे दो-दो ज्वालामुखियाँ— कवि को ऐसी ही आँखों की तलाश रहती है। आज खुश है क्योंकि दीनू की फौलाद-सी सशक्त भुजाएँ हैं। वह अपनी व्यथा बताता है, मुझे दिखाई देते हैं असंख्य नरभक्षक पक्षी— बैठे हैं समूह में/ कर रहे हैं शिखर-वार्ता/ शांति-समझौतों के बना रहे हैं मसौदे/ रख रहे हैं/ विश्व के नए-नए संविधान।

फूलचंद गुप्ता जी का यह प्रिय बिम्ब है, कहते हैं— कौवा मात्र एक पक्षी नहीं/ कौवा एक संस्कृति है, संस्कार है/ सभ्यता है।... मैं तुम्हें बताऊँगा/ कैसे हो जाते हैं/ कौवे/ जीवित/ नर-भक्षक। कवि कौवे की आँखों के बारे में बताता है और यह भी कि जब भी कौवा-संस्कृति पर संकट आता है, सारे संसार के कौवे एक हो जाते हैं। कवि उन कौवों के विरुद्ध हजारों-हजारों हाथों में मशाल थामने की सलाह देता है।

श्री फूलचंद गुप्ता जी की भाषा स्वतः धारदार हो उठती है जब उन्हें अपना आक्रोश, तल्खी या विरोध जताना होता है। हालात को सही-सही पहचान लेना और सही समस्या पर अंगुली रख देना, उनकी बड़ी विशेषताएँ समझनी चाहिए। वैसे तो वे सरल, शान्त व्यक्तित्व के धनी और मृदुभाषी लगते हैं परन्तु उनकी कविताएँ अपना संदेश दे ही देती हैं। उन्हें सोया, हताश, निराश प्राणी पसन्द नहीं है। उनको पता है कि ऐसे व्यक्ति के भीतर भी आग होनी चाहिए, उस आग को प्रज्ज्वलित होते देखना चाहते हैं। उनकी कविताएँ यह काम बखूबी करती हैं।

दीनू और कौवे, फूलचंद गुप्ता, प्रकाशन— पार्श्व पब्लिकेशन, अहमदाबाद

समीक्षा

अनिल मिश्रा "गुरुजी"
मो.–9335556115

देर कभी नहीं होती

प्रेम, हताशा, निराशा, जीने की चाह के बीच बहुत कुछ कहती हैं 'देर कभी नहीं होती' की कहानियाँ।

मनुष्य का जीवन तमाम ऐश्वर्य, वैभव, सुख के बाद भी स्थिर नहीं हो पाता। कुछ खोजता रहता है। तलाशता रहता है कि सब कुछ होने के बाद भी कुछ छूट रहा है। यह छूटना ही उसके अंतर्मन की खोज होती है। जो वह जीवन भर नहीं खोज पाता है और सांसें बंद होने के साथ समाप्त हो जाता है। सहजता से जो प्राप्त होता है, वह हमेशा बना रहता है, लेकिन जहाँ पाने की प्रवृत्ति होती है, उसका टूटना लाजमी है। कुछ ऐसे दर्शन और यथार्थ के साथ जब कहानियाँ आकार लेती हैं, तो वह किताब की शक्ल में 'देर कभी नहीं होती' बन जाती हैं। सन् 2023 के पुस्तक मेले में वरिष्ठ कथाकार आशा पांडेय का कहानी संग्रह पाठकों के बीच आया है। इस कथा संग्रह में वे कहानियाँ हैं जो हमारे आस–पास बराबर चलायमान रहती हैं। कहानियों का मतलब भी वही है और कथाकार का दायित्व भी कि वह अँधेरे को छाँटने का काम करे। लेखन की सार्थकता भी तभी है कि वह मनुष्य के भीतर उठ रही तमाम हलचलों को शांत कर दे। और यह काम आशा पांडेय जी बखूबी करती हैं। समाज, व्यवस्था, चरित्र इस पर इनकी गहरी दृष्टि है। यह दृष्टि उन्हें देखने से नहीं है, बल्कि सार्थकता भी दी है। समय को पकड़कर रखना आशा जी बेहतर जानती हैं। समय ही इतिहास लिखता है, और पराभव भी। बाजार की दुनिया से दूर अपने सृजन में लगे रहना आशा जी की पहचान है। 'देर कभी नहीं होती' इस कथा संग्रह में तेरह कहानियाँ हैं। कहानियाँ अपनी संपूर्णता के साथ पाठकों को रस से ओझल नहीं होने देतीं। विभिन्न रंग, आकार लिए इस कथा संग्रह की कहानियाँ मनुष्य के भीतरी द्वन्द्वों को सामने लाती हैं। अन्याय–झूठ–दमन के विचारों का पर्दाफाश करती हैं।

संग्रह की पहली कहानी 'डेढ़ सेर चाँदी' परिस्थितियों के बनते–बिगड़ते जीवन में पति–पत्नी के बीच के संबंधों को उजागर करती हैं। इस संबंध में स्त्री के जीवन की त्रासदी को आज के दौर में उपजी कुंठा, लालच, जमीन–जायदाद का हड़पना और अंततः पुरुष सत्ता का शिकार बनकर स्त्री के जीवन की त्रासदी को आज के दौर में उपजी कुंठा, लालच, जमीन–जायदाद का हड़पना और अंततः पुरुष सत्ता का शिकार बनकर स्त्री का अस्तित्व ही विलीन हो जाता है। आशा जी जीवन की नब्ज को पकड़कर चलती हैं, और इस पकड़ने में मानव मूल्यों में निरंतर आ रही गिरावट उनकी कहानी के केन्द्र में होता है। 'देर कभी नहीं होती' कहानी में वेदना, दर्द, ग्लानि, क्षोभ और इन सबसे पार जाने की छटपटाहट एक स्त्री के शादी के बाद की जीवन यात्रा है। भारतीय संस्कारों में महिलाएँ अपने घर में हों या शादी के बाद दूसरे घर में जहाँ उन्हें अंतिम साँसों तक अपने से, परिवार से, पति से, जद्दोजहद के अलावा कुछ हासिल नहीं होता। आधुनिक समाज में तो महिलाओं की स्थितियों में काफी परिवर्तन आया है, और वे तमाम वर्जनाओं को तोड़ भी रही हैं, लेकिन पुरानी पीढ़ी में आज भी महिलाएँ अपने होने या न होने के प्रश्न से जूझ रही हैं। चूँकि कथाकार स्वयं एक स्त्री मन है, इसलिए इनकी कहानियाँ मुखर तो नहीं लेकिन इस समाज द्वारा थोपी गयी तमाम विचारधाराओं एवं मान्यताओं के पार उतर जाने का रास्ता सुझाती हैं। 'ढोलकी' जैसा कि नाम से स्पष्ट है, यह कहानी थोड़ा हटकर संगीत के परम आनंद तक ले जाती हैं। वैसे भी गायन हो, वादन हो, नृत्य हो या अभिनय यह मनुष्य की नैसर्गिक प्रतिभा के कायल होते हैं। अगर कलाकार वास्तव में अपनी साधना के प्रति दुनियावी चीजों से विरक्त होकर रमा हुआ है तो साधना और व्यक्ति एक दूसरे के पूरक हो जाते हैं। इस कहानी का चरित्र ढोलकी महिलाओं की संगीत संध्या में नृत्य पर ताल का बेजोड़ वादक है। ढोलकी इसी में रमा हुआ है। यह उसके और परिवार के आर्थिकोपार्जन का साधन है। संगीत में प्यार है, रिद्म है, सात्विकता है। झूठ से परे जाकर जब संदेह पैदा होता है तो इस बीज को काटना मुश्किल होता है। और यही भ्रम ढोलकी और ग्रुप की महिलाओं के बीच उत्पन्न होता है, जिसका अंत दु:खद होता है।

मनुष्य कभी स्थिर नहीं रहता, कुछ पाने की खोज में लगा रहता है। और यह सत्य भी है कि अगर जीवन मिला है, तो जीने का इंतजाम भी करना होगा। लेकिन चल रहे जीवन में अक्सर परिस्थितियाँ निर्णायक मोड़ अदा करती हैं। 'हारा हुआ राजा' एक आदमी की जीवन यात्रा है, जो बहुत कुछ पाने के बाद भी हिस्से में शामिल शून्य होता है। इस संग्रह की यह कहानी जितनी रोचक है, उतनी ही भावुक और द्रवित कर देने वाली भी। प्रेम के बारे में कहा जाता है कि वह शाश्वत है। पर आधुनिक युग में प्रेम के मायने बदले हैं। इस मायने भ्रम पैदा हुआ है और भावनाएँ तार–तार हुई हैं। 'सूखता मौसम मुरझाते फूल' युवा वर्ग के प्रेम की कहानी है। इस प्रेम में भावनाएँ, चाहत, एक–दूसरे के प्रति समर्पण का कोई मूल्य नहीं है। रास्ते अलग–अलग हैं, लेकिन समझने का फेर है। कहने का मतलब कहानी स्पष्ट है जो तुम सोच रहे हो, ऐसा कुछ नहीं है। संग्रह की अन्य कहानियाँ 'ऊँचा पीढ़ा' और 'भरोसा' बहुत ही मार्मिक और संवेदनशील हैं।

'देर कभी नहीं होती'– आशा पाण्डेय, भावना प्रकाशन, दिल्ली

समीक्षा

सार्थक लघुकथाएँ

दीपक गिरकर
वैभव नगर, कनाडिया रोड, इंदौर
मो.– 9425067036

'उड़न–तश्तरी' सुपरिचित लघुकथाकार नेतराम भारती का दूसरा लघुकथा संग्रह है। लेखक के एक गजल संग्रह 'अंधेरों में परछाइयाँ' एक उपन्यास 'अपराजिता', लघुकथा संग्रह 'ब्रीफकेस' लघुकथा चिन्तन और चुनौतियाँ प्रकाशित हो चुके हैं। लेखक के साझा संग्रहों में मुक्तक, गजल, गीतिका शामिल हैं। लेखक कई पुरस्कारों से सम्मानित हो चुके हैं। इस संग्रह में 66 लघुकथाएँ संकलित हैं। नेतराम भारती ने इस संग्रह की लघुकथाओं में मानवीय संवेदना, सामाजिक सरोकार और पारस्परिक संबंधों का ताना–बाना प्रस्तुत किया है। इनकी लघुकथाएँ हमारे आसपास की हैं। इस संग्रह की रचनाएँ अपने आप में मुकम्मल और उद्देश्यपूर्ण लघुकथाएँ हैं और पाठकों को मानवीय संवेदनाओं के विविध रंगों से रूबरू करवाती हैं। इस लघुकथा संग्रह की भूमिका वरिष्ठ साहित्यकार रविकान्त सनाढ्य ने लिखी है। उन्होंने लिखा है— श्री नेतराम भारती की प्रत्येक लघुकथा पाठक के मानस–पटल को झकझोरने में पूर्णतः सफल रहती है। लघुकथा के क्षेत्र में इन्होंने कुछ नए प्रयोग भी किए हैं जो निश्चय ही प्रशंसनीय हैं। लघुकथा के लघु कलेवर को सार्थकत्व प्रदान करने और उसमें निहित कथा तत्व को अक्षुण्ण बनाए रखने में लेखक सिद्धहस्त है।

'पुष्प की पीड़ा' एक अत्यंत संवेदनशील और प्रतीकात्मक लघुकथा है, जिसमें फूलों के माध्यम से मानवता और उसके व्यवहार पर गहरी टिप्पणी की गई है। इस कथा में बूढ़े पुष्प और नवजात कली के संवाद के माध्यम से जीवन के कुछ कटु सत्य उजागर होते हैं। कहानी में बूढ़े गुलाब के पुष्प की पीड़ा को महसूस किया जा सकता है, जो अपनी सुंदरता और महक से दुनिया को आनंदित करता है, लेकिन वह जानता है कि उसकी यह सुंदरता कभी न कभी किसी के हाथों की बलि बन जाएगी। लेखक ने प्रकृति और मनुष्य के रिश्ते को एक गहरे आत्ममंथन में बदल दिया है, जो पाठकों को अपने कार्यों पर पुनः विचार करने के लिए प्रेरित करता है। 'कैब चालक' लघुकथा में कैब ड्राइवर का व्यवहार और उसकी सोच हमें दिखाती है कि सच्ची मदद और दया का कोई व्यापार नहीं होता, बल्कि यह एक मानवीय गुण है जो बिना किसी अपेक्षा के किया जाता है। कैब ड्राइवर के व्यवहार से कैब में बैठी हुई सवारी की सोच में बदलाव आ जाता है।

'डरो मत, कुछ नहीं होगा' एक प्रेरणादायक और हिम्मत को बढ़ाने वाली लघुकथा है, जिसमें चाँदनी के साहस और समझदारी को दर्शाया गया है। यह लघुकथा न केवल एक व्यक्तिगत साहस की यात्रा को प्रस्तुत करती है, बल्कि यह भी दिखाती है कि कैसे एक माँ के सिखाए हुए मूल्य और जीवन के अनुभव किसी मुश्किल समय में मददगार बन सकते हैं। बहादुरी केवल अपनी जान की कुर्बानी देने में नहीं, बल्कि जीवन के संघर्षों से जूझते हुए, अपने डर को परास्त करके विजेता बनने में है। चाँदनी ने अपनी माँ के सिखाए गए मूल्य को सही साबित करते हुए यह दिखाया कि 'जीवित रहकर भी जीत सकते हैं।' 'शाब्दिक जुगाली' लघुकथा में बुद्धिजीवियों की एक बस्ती में चुनाव में खड़े हुए उम्मीदवारों पर बहुत चर्चा हुई लेकिन जब चुनाव का परिणाम आया तो सात हजार की आबादी के क्षेत्र से मात्र आठ सौ पैंसठ वोट ही पड़े। 'राजनीति' लघुकथा में मंत्री जी ने सरकार बचाने के लिए अपने भाई दुर्गेश ने आत्महत्या की है, इसे प्रसारित करवाया क्योंकि राजनीति में सब कुछ जायज है।

'सगा भाई' लघुकथा में त्याग, बलिदान और मानवीय संवेदनाओं का चित्रण किया गया है। 'संतोष' लघुकथा में एक छिपकली अपने बच्चे की जान बचा लेती है लेकिन वह स्वयं क्षत–विक्षत हो जाती है। लहूलुहान और क्षत–विक्षत होने के बावजूद भी उसके चेहरे पर मुस्कान तैर जाती है क्योंकि उसे यह संतोष है कि आज मैंने अपने बच्चे को बचा लिया। 'केसरी' एक सशक्त लघुकथा है। केसरी उग्रवादी नहीं है परंतु विद्रोही जरूर है। वह नारी को मात्र भोगविलास की वस्तु समझने वाली मानसिकता का प्रमुखता से विरोध करती है। समाज में नारी को अबला मानकर उसके साथ मनमानी करने वाले धूर्त चरित्रों से वह जूझती हुई दिखती है। इस लघुकथा में पुरुष सत्तात्मक समाज के शोषण के प्रति विद्रोही स्वर सुनाई पड़ता है। वह यथार्थ से टक्कर लेती है। केसरी ने सिद्ध करके बता दिया है कि परिस्थितियाँ कैसी भी हों एक स्त्री अपने और अपनी बेटी के अस्तित्व और मर्यादा की रक्षा के लिए डटकर मुकाबला करने का साहस रखती है। 'केस डिसमिस' लघुकथा अदालतों के ढीले कामकाज पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। 'सोसाइटी में सुसाइड' लघुकथा में दिवाकर को सोसायटी में रहते हुए पूरे पाँच साल हो गए हैं लेकिन उसे नहीं मालूम कि आसपास के फ्लैट्स में कौन रहते हैं। संग्रह की शीर्षक रचना 'उड़न–तश्तरी' एक फैंटेसी लघुकथा है। इस रचना में दूसरे ग्रह के प्राणियों की पृथ्वी के प्रति जो धारणा बनी हुई थी वह ध्वस्त होने जा रही थी कि एक छोटे बच्चे ने लाज रख ली जिससे हरी रोशनी निकल रही थी। वह छोटा बच्चा पौधों को पानी दे रहा था और तेज हवा चलने पर वह अपने नन्हें हाथों से पौधों की सुरक्षा भी कर रहा था।

'न्याय कीजिए' और 'इग्नोर' लघुकथाओं में काव्य का प्रयोग किया गया है। नेतराम भारती ने 'धर्मद्रोही' लघुकथा विक्रम–बेताल की शैली में लिखी है। 'शाही पनीर', 'दंपत्ति और दुर्योधन', 'सलाह', 'रिश्ते से इंकार', 'नौकरी का पहला दिन', 'कागज के पुर्जे', 'कुछ प्याले कुछ तश्तरियाँ' जैसी लघुकथाएँ लंबे अंतराल तक जेहन में प्रभाव छोड़ती हैं। इस संग्रह की अन्य लघुकथाएँ मन को छूकर उसके मर्म से पहचान करा जाती हैं।

जीवन की विविध मार्मिक घटनाओं पर रचनाकार की बारीक दृष्टि काबिलेतारीफ है। इस संग्रह की लघुकथाएँ लंबे अंतराल तक जेहन में प्रभाव छोड़ती हैं। नेतराम भारती पात्रों की संवेदनहीन तथा व्यावहारिक प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते हैं। नेतराम भारती अपने लघुकथा साहित्य में मानवीय मूल्यों को केंद्र में रखकर सृजन करते हैं। इनकी रचनाओं में सामाजिक चेतना, मानवीय संवेदना एवं समाज का यथार्थ चित्रण उभरकर सामने आता है। नेतराम भारती ने इन लघुकथाओं में विसंगतियों और मानवीय मूल्यों को तलाशने का प्रयास किया है। नेतराम भारती की लघुकथाएँ समाज और व्यवस्था की विसंगतियों पर भरपूर वार करती हैं और साथ ही ये रचनाएँ समाज को सीख देती हैं। नेतराम भारती ने न केवल पात्रों की संवेदनहीनता और व्यावहारिकता पर प्रकाश डाला है, बल्कि समाज और व्यवस्था की विसंगतियों को भी उजागर किया है। यह संग्रह न केवल समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है, बल्कि पाठकों को सामाजिक बदलाव और सुधार की आवश्यकता का अहसास भी कराता है। कुल मिलाकर, यह लघुकथा संग्रह एक प्रबुद्ध पाठक वर्ग के लिए विचारपूर्ण और प्रेरणादायक है। नेतराम भारती की रचनाओं की भाषा सहज, स्वाभाविक और सम्प्रेषणीय है। 160 पृष्ठ का यह लघुकथा संग्रह आपको कई विषयों पर सोचने के लिए मजबूर कर देता है। आशा है प्रबुद्ध पाठकों में इस लघुकथा संग्रह का स्वागत होगा।

पुस्तक–'उड़न–तश्तरी'(लघुकथा संग्रह), लेखक–नेतराम भारती,
प्रकाशक–अयन प्रकाशन,
जे–19/39, राजापुरी, उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059

समीक्षा

कर्ण महाकाव्य का सौंदर्य सौष्ठव

दयानन्द जायसवाल

डॉ. आभा पूर्वे, भागलपुर (बिहार) की यह गहन अनुशीलन के उपरांत प्रकाशित पुस्तक डॉ. अमरेन्द्र का 'कर्ण' महाकाव्य पर मूल्यांकित है जिसे इन्होंने बड़े मनोयोग से एवं निष्ठापूर्वक अपनी लेखनी से सँवारा है। पुस्तक में डॉ. अमरेन्द्र की कृतियों के साथ स्वयं लेखिका की छवि भी पाठक के समक्ष प्रस्फुटित हुई है। उनकी कृतियों के प्रत्येक पक्ष पर इन्होंने अलोकपात किया है। उक्त काव्य 'कर्ण' पर इतना सूक्ष्म विवेचन निश्चित तौर पर इस पुस्तक को महत्वपूर्ण बना देता है। डॉ. आभा की भाषा में सरलता, तरलता, निश्छलता ही नहीं, बल्कि आलोचनात्मक गहराई में गोता लगाने की क्षमता भी है। वस्तुतः मानव जीवन और युगयथार्थ का रचनात्मक उद्घाटन तथा आत्मविस्तारपरक काव्यकृति पर यह अकाट्य विश्लेषण दर्शाता है कि साहित्य आज जिस गति के साथ विकसित हो रहा है, उसको देखते हुए हमें कहना पड़ता है कि आधुनिक काव्य–काल बहुत दिनों तक रहेगा, क्योंकि वह मानव जीवन के ऐसे–ऐसे अमर तत्वों से संजीवित हो उठा है, जो हमें नित्य इसके प्रति (उस तत्व के प्रति) सदा निष्ठ और श्रद्धायुक्त बनाए रखता है। 'कर्ण महाकाव्य का सौंदर्य सौष्ठव' से यह भी प्रतीत होता है कि डॉ. अमरेन्द्र का 'कर्ण' महाकाव्य हमें नीलगगन के अथाह शून्य में भटकाता नहीं, वरन् जीवन को उसके यथार्थ स्वरूप में ग्रहण कराते हुए उस ओर उठा ले जाता है जहाँ हम मूल्यों के प्रति अधिकाधिक प्रामाणिक होते हैं। लेखिका डॉ. आभा पूर्वे ने कवि के काव्य की बारीकियों को इस पुस्तक के माध्यम से प्रबुद्ध जनों के समक्ष लाने का सार्थक प्रयास किया है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. अमरेन्द्र हिन्दी और अंगिका के वरिष्ठ सम्मानित रचनाकार हैं जिन्होंने काव्यविधा हो या नाटक, निबंध, आलोचना, खण्डकाव्य, प्रबन्धकाव्य, अनुवाद हो या हो सम्पादन बड़ी शिद्दत से साहित्य सृजन किया है। इनकी ही रचना 'कर्ण' प्रबन्धकाव्य है जो तेईस पर्व (खण्ड की जगह) में क्रमशः इस प्रकार विभाजित है— जनुष, प्रारब्ध, बीज, चन्द्रातप, प्रज्ञा, भँवर, प्रबोध, प्रमदवन, संक्रांति, प्रतिज्ञा, स्वप्न, वृष, आवर्त्त, प्रत्यूष, गिरिडीह, गवाक्ष, प्रपंच, पुनरनव, प्राणदान, कूटनीति, घटुत्कच, मकर और पँचतापर्व के रूप का संकेत कथानक व्यास के महाभारत से बहुत साम्य रखता है। भारतीय काव्य शास्त्रियों के अनुसार महाकाव्य के नायक धीरोदत्त के रूप में विनीत, मधु, त्याग, दक्ष, प्रियंवद, प्रज्ञावान, स्मृति सम्पन्न, उत्साही, शूर, तेजस्वी, दृढ़, शास्त्रज्ञ और धार्मिक मनोवृत्ति का होना चाहिए जो कवि और आलोचिका के अनुसार इस महाकाव्य का कर्ण देववंश, उच्चवंशी होने के साथ उपरोक्त सभी गुण सम्पन्न होने के कारण कर्ण ही धीरोदत्त नायक है।

डॉ. आभा पूर्वे ने 'कर्ण महाकाव्य का सौंदर्य सौष्ठव' को क्रमशः इस प्रकार विभक्त किया है—

'डॉ. अमरेन्द्र और आलोचक'— इसमें कृपाशंकर पांडेय और सत्यकेतु जी के द्वारा कवि के उदात्त व्यक्तित्व के संबंध में कहा गया है कि लोकभाषा और लोककथा के प्रति डॉ. अमरेन्द्र का प्रेम ममत्व के स्तर को छूता प्रतीत होता है।

'कर्ण महाकाव्य के विद्वान आलोचक'— इसमें डॉ. रमेश कुंतल, डॉ. अमरनाथ सिंह बधान, कल्पना पांडेय, कश्मीरा सिंह, डॉ. कल्पना दीक्षित, बाबू गोपाल शरण सिंह आदि की प्रतिक्रियाएँ पुस्तक की गरिमा बढ़ाती हैं। कवि अमरेन्द्र ने इतिहास के अँधकार में प्रज्ञा के दीप जलाकर भावों को साथ लिया है। यह भाव साधना 'कर्ण' के माध्यम से मनुष्यता को जगा देने में पूर्ण समर्थ है।

'कर्ण का प्रेरणा स्रोत'— यह आत्मविश्वास और समर्थता के साथ अपने लक्ष्यों की दिशा में अग्रसर करता है तथा नयी संभावनाओं की खोज करने के लिए प्रेरित करता है। कवि को 'कर्ण' लिखने की प्रेरणा भागलपुर विश्वविद्यालय की टीलाकोठी जो कर्ण के मुख्य किले की दीवार का वह स्तम्भ था, जहाँ से शत्रुओं पर आँखें रखीं जाती थीं। दुर्ग के उत्तर पूर्व बहती गंगा की मुख्य विस्तृत धारा को देखते ही इतिहास–पुराण का कर्ण सामने खड़ा हो जाता और वह चित्र इनके मानस में नाटकीयता पूर्ण उभरने लगता, फिर क्या था एक प्रबन्धकाव्य का ही सृजन हो गया।

'महाकाव्य के लक्षण और कर्ण महाकाव्य'— इसमें आलोचिका कहना चाहती है कि 'जिसका रचित नायक उच्चवंश का हो और सभी उदात्त गुणों से सम्पन्न हो, जिसका उद्देश्य चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति हो, जो भावों, रसों से भरा हुआ अलंकृत शैली में निर्मित हो, जो सर्गबद्ध हो, पंच सन्धियों से युक्त वृहत्ताकार हो और जो कई प्रमुख–अप्रमुख काव्य रूढ़ियों से युक्त हो', वही महाकाव्य है। इसके आलोक में डॉ. अमरेन्द्र का 'कर्ण' महाकाव्य है। डॉ. अमरेन्द्र की लेखनी कथासूत्रों का संकेत कर बार–बार कर्ण के अंतर्मन की ओर मुड़ जाती है। कवि को जहाँ भी अवसर मिलता है वहाँ इन्होंने कर्ण के माध्यम से समानता की भावना, कर्ण की अन्तरपीड़ा तथा कर्ण का अनदेखा चारित्रिक पक्ष और पर्यावरण–संरक्षण चेतना जैसे विषयों से संबद्ध चिंतन को व्यक्त किया है। इसमें नारी–विमर्श को भी पर्याप्त जगह मिली है। कर्ण की पत्नियाँ— वृषाली और पुनर्नवी अब तक 'कर्ण' महाकाव्य में उपेक्षित पात्र रही हैं। किंतु इस काव्य में कर्ण के साथ इन दोनों के संवाद भी हैं। कथा संयोजन की मौलिकता के संग–संग भाव–संयोजन और विचार–संयोजन की मौलिकता एक नयी दृष्टि से देखने की अनिवार्यता स्थापित करती है। कथानक में कर्ण के पूर्व–जीवन की कथा, कर्ण के तीर से मुनि–हत्या की कथा, चन्दन नदी से जुड़ी कथा, धरती के द्वारा कर्ण को शापित करने की कथा, मृत्युकाल में कर्ण के द्वारा दान की कथा एवं कई उपाख्यानों–प्रकरणों के कारण 'कर्ण' की कथावस्तु चमत्कृत हो गयी है।

'सर्ग विधान'— कवि ने सर्ग विभाजन को भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार आठ की संख्या में नहीं बाँधा, बल्कि प्रत्येक सर्ग के अलग–अलग शीर्षक से सर्ग या खण्ड को पर्व के नाम से अंकित किया है जिसकी संख्या तेईस है।

'महाकाव्य के चरित्र'— इसके पुरुष पात्र ही ओज के उदात्त चरित्र नहीं हैं, बल्कि इसके अधिकांश नारी पात्र भी हैं। यहाँ आधुनिक नारीवाद नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति से प्रभावित स्त्री विमर्श है। कवि ने कर्ण के उन सभी प्रकरणों–प्रसंगों को समेटने में चूक नहीं किया है जो इनके चरित्र को असामान्य बनाते हैं।

'कर्ण काव्य में रस विधान'— इसमें कर्ण ही जब अपने अप्रतिम शौर्य, वीरता, दानशीलता के लिए प्रसिद्ध है और नायक है, तो स्वाभाविक ही है कि इस महाकाव्य का मुख्य रस वीर रस है। यहाँ कर्ण के सम्पूर्ण जीवन को जिस विस्तार के साथ और विविध कोणों से चित्रित किया गया है उससे काव्य में वीर रस के साथ अन्य सहचर रस शृंगार, रौद्र, भयानक, अद्भुत, करुण, वात्सल्य तथा शांत रसों की उपस्थिति भी स्वाभाविक रूप से हो गयी है।

'महाकाव्य का महाभाव'— मुख्य रूप से इसका उद्देश्य आज के जलते

सामाजिक और पर्यावरण से जुड़ा सवाल है जिसमें आज पूरा विश्व जाने–अनजाने जूझ रहा है। साथ ही इसका महाभाव प्रकृति और आम जन के बहाने वनवासियों का राजनीतिक संरक्षण भी है तथा पारिवारिक–सामाजिक जीवन का समभाव भी समाहित है जो पति–पत्नी, पिता–पुत्र, माता–सन्तान, गुरु–शिष्य के नैतिक संबंधों से यहाँ उजागर होता है।

इसी प्रकार डॉ. आभा पूर्वे ने 'कर्ण' महाकाव्य के परिवार और प्रकृति, आधुनिकता के आयाम, मनोविज्ञान और कर्ण महाकाव्य, इसके प्रेम निरूपण, कल्पना और सौंदर्य, शिल्प–सौष्ठव, कर्ण महाकाव्य का काव्य रूपक, कर्ण में उदात्त और औचित्य का निर्वाह तथा छंद विधान आदि विभिन्न आयामों पर दृष्टिपात किया है। निःसंदेह वाक्य विन्यास प्रबंध की भाषा में एक विशिष्ट आकर्षण देखने को मिलता है– कहीं तो प्रश्नोत्तर का विधान तो कहीं प्रश्न–पर–प्रश्न–

"बोलते जाओ सभी कुछ मैं भी तो लूँ जान
क्या हुआ जब अस्त मेरा हो गया दिनमान
दे गए मेरे लिए भी क्या कोई संदेश
इस अभागिन के लिए कुछ आखिरी आदेश
बिंध गए जब तीर से थे कौन उनके पास
दूत बोलो मौन रहकर मत करो उपहास।"

★★★★★

"केशव क्या कृष्ण का मैं अपमान कभी कर सकता
शील, रूप जिसका ही मेरे मन में रहा महकता
कवच और कुंडल ले जाता छल से धर्म नियम है
मृत्यु भेद को पूछ मारना यह सत्कर्म परम है?"

डॉ. अमरेन्द्र की इस कृति में शब्दालंकार से अधिक योगदान अर्थालंकार का है और इसमें भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकार का है तथा इसके सहयोग से इनको बिम्ब विधान में भी सफलता मिली है। इस प्रबंध काव्य में मात्रिक वर्ग के जिन छंदों का विधान मिलता है उनमें पीयूष, निर्झर, सार, दिगम्बरी, गीतिका, रूपमाला, विधाता, सरसी तथा रोला छंद का प्रयोग हुआ है। कवि की लेखनी और मर्यादित भाषा धैर्य, संघर्ष, उत्कृष्टता, प्रेम, त्याग और कर्म जैसे मूल्यों का प्रेरक सन्देश देती है।

'अंगिका संसद' डॉ. आभा पूर्वे, भागलपुर, बिहार

समीक्षा

2. अमृतदेश अंगप्रदेश

डॉ. अमरेन्द्र, भागलपुर (बिहार) की यह कृति 'अमृतदेश : अंगप्रदेश' साहित्य की अमूल्य निधि है। विचारात्मक एवं शोधात्मक संवादों का यह संग्रह 'रूपक' जिन्हें सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं मानवतावादी युगीन व्याख्याता के रूप में अधिष्ठित करता है। इस पुस्तक को इन्होंने नाटकीयता का स्वरूप प्रदान किया है और इसे आकाशवाणी के द्वारा विभिन्न भाषाओं में प्रसारित भी किया गया है। इसमें अंग प्रदेश की सभ्यताओं, संस्कृतियों, विचारों, मूल्यों, मर्यादाओं, लोकजीवन के रीति–रिवाजों को रेखांकित किया गया है जिसका स्वरूप बहुत ही रोचक और विविधतापूर्ण है जो प्राचीनतम सभ्यताओं से जुड़ी है। आकाशवाणी से यह धारावाहिक रेडियो रूपक 'अंगदेश का अमृत मंथन' के नाम से प्रसारित हुआ है किंतु इसे 'अमृतदेशः अंगप्रदेश' के नाम से अंगिका संसद भागलपुर के द्वारा द्वितीय संस्करण के रूप में प्रकाशित किया गया है।

डॉ. अमरेन्द्र जी ने इसे एक स्वतंत्र अवधारणा के रूप में और साहित्य के दायरे में, कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में अभिनय के माध्यम से अंगप्रदेश की एक ऐतिहासिक कथानक प्रस्तुत किया है जिसमें संवाद और क्रियाओं के द्वारा, पात्र अपनी प्रेरणाओं, संघर्षों और विकास को प्रकट करते हैं।

साहित्य में महान कृतियाँ (रूपक) अक्सर उस समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को दर्शाती है, जिस हेतु वे लिखे गए हैं। नाटक की शक्ति न केवल मनोरंजन करने की क्षमता में निहित है, बल्कि मानवीय और ऐतिहासिक स्थिति के साथ गहराई से जुड़नेवाले मुद्दों से जोड़ने की क्षमता भी निहित है। इन्होंने इस रूपक के रूप में वैदिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक वैभवशाली धरोहर इस प्रदेश को सौंपी है जिसमें अंगप्रदेश की ऐतिहासिक शृंखला की स्मृति है, एक लेखा–जोखा है, अस्मिता की अनुभूति है, पूर्वजों की विरासत है, संवाद का संदर्भ है, पृष्ठभूमि का विश्लेषण है, विमर्श है और अपनी जड़ों तक पहुँचने का सर्वेक्षण है। इन्होंने अंगप्रदेश का शोध विस्मृति के गर्भ में जाकर किया है। अंगप्रदेश की जो साक्षात् संपदा है उन तथ्यों और तत्वों को कलात्मक और शोधात्मक रूप में अंगवासियों को दिया है।

प्रत्येक सर्जक–कलाकार या साहित्यकार अपने सृजन की प्रक्रिया में चेतना के उसी धरातल पर पहुँचकर साहित्य सृजन करता है, जहाँ सृष्टि के प्रत्येक कण में उसकी सत्ता सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहती है। सर्जक साहित्यकार अपने सृजन के क्षणों में एक अलौकिक सत्ता की आध्यात्मिक अनुभूति करता है और असीम ऐक्य की चेतना से समन्वित होकर साहित्य सृजन करता है। साहित्य सृजन के समय देश, काल, व्यक्ति आदि की सीमाएँ विलीन हो जाती हैं तथा सर्जना के क्षणों में सृष्टि में अपना–पराया का भेद नहीं होता। अतएव जीवन में पूर्णता की खोज ही वैश्विक जीवन–दर्शन का आधार होता है। इसलिए सर्जक को सार्वभौम सत्य का उद्घाटक तथा उद्भावक भी कहते हैं।

डॉ. अमरेन्द्र बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं। इन्होंने पूरी निष्ठा, आत्मीयता और समर्पण भाव से हिन्दी तथा अंगिका की सेवा की है और उसके साहित्य भंडार को गजल, कविता, गीत, नवगीत, कहानी, उपन्यास, आलोचना, प्रबन्ध–काव्य, नाटक, रेडियो रूपक आदि के लगभग 70 पुस्तकों से सुशोभित किया है। साहित्य तो इनका जीवन है, शिराओं में बसनेवाला लहू है, इनका वर्तमान भी है और भविष्य भी।

अमृतदेश अंगप्रदेश के रूपक को इन्होंने 13 खण्डों में विभक्त किया है तथा इसे तर्क, विवेकसंगत दर्शन, पुराणों, वेदों की ऋचाओं और वैज्ञानिकता के आधार पर सम्पुष्ट भी किया है जो क्रमशः इस प्रकार है — प्रथम खंड में पृथ्वी का जन्म; पृथ्वी पर द्वीप की तरह, हिम समुद्र के बीच, अंगद्वीप का प्रकटना; इस द्वीप पर मानव–जन्म के साथ आदिदेव शिव का आविर्भाव और

द्वीपवासियों के साथ मिलकर देवताओं का समुद्र–मंथन। द्वितीय खंड में अंगद्वीप पर सुरों–असुरों का समुद्र–मंथन, वैदिक देवताओं और अवैदिक असुरों के संघर्ष। तृतीय खंड में रामायण युग के अंगदेश का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, अंगदेश के महर्षि ऋष्यश्रृंग का, अवध नरेश के लिए तथा अमृतमय पुत्रेष्ठि महायज्ञ का आयोजन। चतुर्थ खण्ड में अंगप्रदेश का महाभारत युगीन द्वापर युग का शौर्यमंथन तथा महासंग्राम के महाबली कर्ण का आमरण ऐतिहासिक चित्रण। पंचम खण्ड में नागवंश की उत्पत्ति, जन्मेजय का नागयज्ञ, पुण्डरीक की कथा, बुद्धकाल के अंग का इतिहास, बौद्ध धर्म का अमृत–मंथन तथा अंग की धरती पर कलि के शाप को धोने आए तीर्थंकरों के साथ भगवान बुद्ध की गाथा। षष्ठ खण्ड में अंग की धरती पर बौद्ध धर्म का आत्मसंघर्ष, उत्कर्ष, पराभव के परिदृश्य तथा पालवंशी अंग के इतिहास का वर्णन। सप्तम खण्ड में अंगदेश के प्राचीन और मध्यकाल के पुरातत्व का इतिहास तथा पत्थरों–धातुओं का मूर्तियों में ढालना, भवनों–मंदिरों–किलाओं में कलाकृति का उभरना एवं सांस्कृतिक धरोहरों का अमृतमंथन। अष्टम खण्ड में पूर्व और उत्तर मध्यकाल में अंगप्रदेश का धार्मिक इतिहास, जिससे शताब्दियों तक किस प्रकार अंगप्रदेश बंधा रहा और इसी बीच जीवन के सामाजिक तथा धार्मिक मूल्यों का मंथन एवं अंगिका लोकगाथा। नवम खंड में स्वतंत्रता संग्राम के पाँचजन्य: तिलकामांझी। दशम खण्ड में तिलकामांझी की शहादत से आलोकित अंगप्रदेश का नया समरमंथन। एकादश खण्ड में देश की आजादी के लिए अंगप्रदेश के स्वतंत्रता सेनानियों की बलिदानियों का समरमंथन गाथा। द्वादश खण्ड में अंगप्रदेश के पहाड़ों, नदियों, झीलों और जंगलों से भरापूरा प्राकृतिक वैभव की चर्चा तथा अंत के त्रियोदश खंड में वर्णन है कि यह अंगप्रदेश लाखों–करोड़ों वर्षों की यात्रा तय कर आज भी किस प्रकार जिंदा है– कहीं पर्वतों के हृदय में तो कहीं रेत हो गयी नदियों में, सागर पार की कथाओं में, वेदों में तथा पुराणों में।

लेखक डॉ. अमरेन्द्र के इस कथानक के आधार पर अंगिरा, अंगिरस ऋषिकुल के नाम से ही अंगदेश का नाम वेदकाल से स्थापित है। हर्यक के बाद कोई ऐसा अंगपति नहीं हुआ जो ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय कहा जा सके। मगध के राजा वृहद्रथ ने अंग की सीमा को काटकर छोटा कर दिया था, किंतु अंग के नए नरेश कर्ण ने मित्रता के निर्वहण में पुनः लौटा लाया जिसमें कलिंग, पौण्ड्र, बंग, मिथिला और मगध सभी शामिल थे। लेकिन कर्ण के सूर्यास्त होते ही एक अनिश्चितता के धुँधलके के बीच पड़ गया। अजातशत्रु ने भी अंग का इतना शोषण किया कि प्रजा क्षुब्ध रहने लगी। क्रमशः बिहार पुनर्गठन अधिनियम के अंतर्गत अंगप्रदेश को और भी निर्ममता से विभाजित कर दिया गया और यह गिरिडीह से लेकर मुँगेर के जमुई तक और मिदनापुर से कर्णगढ़ तक सिमट गया। यह मनोरम थाती (रूपक के रूप में) रचनाकार के कठिन अनुसंधान का प्रमाण है।

डॉ. अमरेन्द्र की भाषा में सरलता, सहजता एवं तरलता के गुण विद्यमान हैं। इनकी शैली में विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, उद्धरण शैली तथा समीक्षात्मक शैली मिलती है।

डॉ. अमरेन्द्र, अंगिका संसद प्रकाशन

समीक्षा

3. नवधा

'नवधा', अयन प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित डॉ. जेन्नी शबनम, दिल्ली का यह काव्य–संग्रह कवयित्री के हृदय की संवेदनशीलता और कोमलता बयां करता है। इनकी दृष्टि विषयों के बहुत गहरे उतरती है और उनके मर्म को सहेज लाती है। बहुत आह्लादकारी हैं इनकी आत्मीय मिठास से बुनी इनकी रचनाएँ, जहाँ आज के विघटनकारी समय में सब कुछ टूट रहे हैं, यहाँ तक कि रिश्ते–नाते भी। वहाँ इनकी रचनाएँ उनको बचाकर रखने की कोशिश ही नहीं, एक कोमल जिद्द भी है। बिम्बों के चयन ही नहीं, रंगों और रसों का संयोजन भी इनकी रचना की अपूर्व विशेषता है जिसमें पाठकों को आकृष्ट करने की प्रबल क्षमता है। नारी जीवन की बेचैनी और सामाजिक असमानता दिखाने के बाद भी इन्होंने कहीं पराजय, टूटन, थकान और गतिहीनता का पक्ष नहीं किया। इनका स्वप्नजीवी मन कुहासे को चीरकर उजाले को जमीन पर लाने के आग्रहों से भरा है।

कवयित्री डॉ. जेन्नी शबनम का 'नवधा' काव्य संग्रह में नौ विधाओं का संग्रह है। उन नौ विधाओं में 'हाइकू', 'हाइगा', 'तांका', 'सेदोका', 'चोका', 'माहिया', 'अनुबन्ध', 'क्षणिकाएँ' तथा 'मुक्तावलि' हैं। नवधा–काव्य–सृजन में इनका सम्पूर्ण परिचय और इनके जीवन के मीठे–कटु अनुभवों का आत्मालोचन भी है। इनकी यह सारी काव्य शैली जापानी कविता की समर्थवान विधा है। हाइकू का विकास होक्कू से हुआ है जो एक लंबी कविता की शुरुआती तीन पंक्तियाँ हैं जिन्हें टंका के नाम से भी जाना जाता है। यह 5–7–5 के शब्दांश होते हैं जिसमें इन्होंने प्रेम की महत्ता को इस प्रकार दर्शाया है–

"प्रेम का काढ़ा
हर रोग की दवा
पी लो जरा–सा।"

'हाइगा' जिसका शाब्दिक अर्थ है– 'चित्र कविता' जो चित्रों के समायोजन से वर्णित किया गया है। यह हाइकू का प्रतिरूप है जिसमें इन्होंने समुद्र की लहरों का सचित्र वर्णन किया है–

"पाँव चूमने
लहरें दौड़ आई
मैं सकुचाई।"

'तांका' जापानी काव्य की एक सौ साल पुरानी काव्य विधा है। इस विधा को नौवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के दौरान काफी प्रसिद्धि मिली। उस समय इसके विषय धार्मिक या दरबारी हुआ करते थे। हाइकू का उद्भव इसी से हुआ है। यह पाँच पंक्तियों और 5–7–5–7–7= 31 वर्णों के लघु कलेवर में भावों को गुम्फित करता है, जिसे इन्होंने बाल कविता के रूप में एक नन्हीं–सी परी को आसमान से उतारा और वो बच्चों का दिल बहलाई और पुनः लौट गई। उसे इन चंद पंक्तियों में भावनाओं के अथाह सागर–सा उड़ेल दी है–

"नन्हीं–सी परी
लिए जादू की छड़ी
बच्चों को दिए
खिलौने और टॉफी

फिर उड़ वो चली।"

'सेदोका' में किसी एक विषय पर एक निश्चित संवेदना, कल्पना या जीवन–अनुभव वर्णित होता है। इसमें क्रमशः 5–7–7–5–7–7 वर्णक्रम की छह पंक्तियाँ होती हैं, जिसे इन्होंने वियोगावस्था का वर्णन, प्रेमिका के मन की पीड़ा को संवेदनाओं की काली घटाओं में इस प्रकार घोला है–

"मन की पीड़ा/बूंद–बूंद बरसी/बदरी से जा मिली/तुम न आए/साथ मेरे रो पड़ी/काली घनी घटाएँ।"

'चोका' भारतीय दृष्टिकोण से यह एक वार्णिक छंद है जिसमें 5–7–5–7 वर्णो के क्रम में कई पंक्तियाँ हो सकती हैं। इसके अंत की दो पंक्तियों में सात–सात वर्ण होते हैं। इस कला पक्ष के साथ भाव के प्रवाह में रची गयी कविता 'चोका' कहलाती है।

कवयित्री के मन में अपनी इन कविताओं को लेकर कोई दुविधा नहीं है। देश दुनिया के संघर्षजीवी जन के सुख–दुःख, हर्ष–विषाद, आकांक्षाओं और बेहतर जिन्दगी, बेहतर दुनिया के लिए इनकी मुक्ति चेतना ही प्रतिबद्धता है। दूसरी ओर इस प्रतिबद्धता के पीछे इनकी समस्त भावनाओं, अनुभूतियों, आत्मीयता और कोमलतम संवेदनाओं को बचा लेने का मन दिखता है, जिसके बिना न तो जीवन जीने योग्य दिखता है और न ही मनुष्यता सुरक्षित हो सकती है। इनकी कविताओं में प्रकृति के उपादानों के माध्यम से मानव जीवन के अनुभवों को कुशलता से व्यक्त किया गया है। इसमें अभिव्यक्ति की सहजता और शब्दों की तरलता के साथ–साथ दृश्यात्मक बिम्बों की विशिष्टता देखकर आँखें जुड़ा जाती हैं। 'चोका' की ही इनकी एक कविता है–

'सुहाने पल'– "मुट्ठी में बंद/ कुछ सुहाने पल/ जरा लजाते/ शरमा के बताते/ पिया की बातें/ हसीन मुलाकातें/ प्यारे–से दिन/ जगमग–सी रातें/ सकुचाई–सी/ झुकी–झुकी नजरें/ बिन बोले ही/ कह गई कहानी/ गुदगुदाती/ मीठी–मीठी खुशबू/ फूलों के लच्छे/ जहाँ–तहाँ खिलते/ रात चाँदनी/ आँगन में पसरी/लिपट कर/ चाँद से फिर बोली/ ओ मेरे मीत/ झीलों से भी गहरे/ जुड़ते गए/ ये तेरे–मेरे नाते/ भले हों दूर/ न होंगे कभी दूर/ मुट्ठी ज्यों खोली/ बीते पल मुस्काए/ न बिसराए/ याद हमेशा आए/ मन को हुलसाए।"

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि ऐन्द्रिय बिम्बों से बुना गया इनकी अन्य कविताओं का सृजनात्मक कर्म जीवन के सन्दर्भो का समुच्चय है। कवयित्री का यह प्रयास घर को घर की तरह रखने का संकल्प है। घर गहरी आत्मीयता, परस्पर सम्बद्धता, समर्पण, विश्वास और व्यवस्था का एक रूप है। दीवारों के दायरे को भरे–पूरे संसार में तब्दील करना इनका लक्ष्य है। इनकी यह सोच इनकी लोक–संपृक्ति का प्रमाण है। अयन प्रकाशन, दिल्ली

समीक्षा

4. शौर्य धारा का राजस्थान

मनोरमा सिंह 'अंशु' मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश में जन्मी चुरहट, मध्यप्रदेश की रहने वाली का यह महाकाव्य है, किन्तु महाकाव्य में यह कथ्यात्मक प्रबंध काव्य नहीं बल्कि वर्णनात्मक प्रबन्ध काव्य है जिसमें राजस्थान के शासकों और राजाओं की शौर्य गाथाएँ उनकी अद्भुत वीरता, अदम्य साहस, असाधारण पराक्रम और अतुलनीय बलिदान जैसी कहानियों को आधार बनाकर प्राकृतिक सौंदर्य के साथ–साथ राजस्थानी संस्कृति और परम्पराओं की सुंदरता, प्रेम और त्याग की अमर गाथा को दर्शाती हुई ऐतिहासिक काव्य रचना की है।

कवयित्री मनोरमा सिंह 'अंशु' एक तरफ रागात्मक संघर्षों की रचना करती हैं, तो दूसरी ओर सामाजिक और राष्ट्रीय परिदृश्य को सामने लाती हैं। एक तरफ यदि इनका आत्मगत पक्ष है तो दूसरी ओर वस्तुगत पक्ष भी है। एक ओर इनके निजी जीवन के मनोभाव हैं, तो दूसरी ओर सामाजिक सरोकारों की एक भरी–पूरी दुनिया है। इनकी रचनाओं में अदम्य जिजीविषा, आस्था और संघर्ष के साथ–साथ उसमें परिवर्तन की अकुलाहट भी दिखाई देती है। इनमें लोक चिंता के साथ राष्ट्रीय अस्तित्व की चिंता भी है। इनकी प्रकाशित रचनाएँ अधिकांशतः काव्य–संकलन ही हैं जिनमें 'अनुभूति के स्वर', 'भावों की मन्दाकिनी', 'सपनों का पारिजात', 'नन्दन वन के गुलमोहर', 'उतरा सूरज आँगन में' के अलावा अनेक सम्पादित संकलन और समीक्षाएँ भी हैं।

कवयित्री ने अपने इस प्रबन्ध काव्य को बारह सर्गो में विभक्त कर राजस्थान की धरती की महिमा का बखान कर हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट जगह बनाई है। इस काव्य का मुख्य चरित्र कोई व्यक्ति नहीं बल्कि राजस्थान की धरती है, उसकी गौरव गाथा है। इसके शौर्य को जन–जन तक पहुँचाना ही कवयित्री का लक्ष्य है–

"उस बलिदानी मिट्टी रज को
मैं करती सौ–सौ बार नमन
नमन राजस्थानी मिट्टी को
जिसने रिपु जंगल किया दमन"

"आदित्य अलौकिक रश्मि प्रभा
इस धरती से टकराती है
इतिहास समेटे कण–कण में
यह राजस्थानी माटी है।"

इस काव्य के प्रथम सर्ग में मंगलाचरण, मातृभूमि वन्दना, द्वितीय सर्ग में लेखनी वंदना, तृतीय सर्ग में राणाओं का काल और उनके कार्य, शौर्य, पद्मिनी और रतन का मिलान, रतन सिंह का विरह, नागमती का विरह तथा रानी पद्मावती का जौहर चतुर्थ सर्ग में राणा कुम्भा का पराक्रम, पंचम सर्ग में मीराबाई की जीवनयात्रा, षष्ठ सर्ग में वीर कल्ला का बलिदान, सप्तम सर्ग में भाले एवं चेतक का शौर्य तथा द्वादश सर्ग में प्रताप का शौर्य, राणा का हुंकार और राजस्थानी धरती का क्रंदन को स्थान दिया गया है –

"कितना मैं शौर्य लिखूँ उसका
न मिले अंत मुझको जिसका
किसकी उपमा कह जाऊँ मैं
कितने रूपक बह जाऊँ मैं"

"राणा प्रताप और सांगा के
गौरव का गान सुनता है
वीरता बसी है रग–रग में
यह राजस्थान कहाता है"

"घोड़े समेत दो टुकड़ों में
तब चीर दिया महाराणा था
जिसपर अकबर को नाज रहा
सेनानायक मनमाना था"

"भ्रम टूट गया था मुगलों का
खुद को अजेय कहलाने का
तब अबुल फजल भी बोल उठा
लड़ना है जान गवाने का"

"बहु क्रंदन को करते–करते
धरती समाधि में लीन हुई
हो गया प्रशांत चित्त उसका
वह तो तुरीय का शीश छुई।"

कवयित्री 'अंशु' की रचनाओं के कई ओर–छोर हैं। इनके काव्य की विशेषता राजस्थान की धरती का शौर्य और रचनाओं की सादगी है। इन्होंने अपनी बात असरदार ढंग से रखी है। भाषा, भाव और शिल्प प्रसंगानुकूल हैं। पद्य कहीं छंद में तो कहीं छंद मुक्त भी हैं। अलंकारों का भी प्रयोग किया गया है। काव्य में इतिहास, संस्कृति और परम्पराओं की सुंदरता तथा योद्धाओं के शौर्य, त्याग और मूल्य को दर्शाया गया है।

समीक्षा

5. उधेड़बुन

'उधेड़बुन' सेवा सदन प्रसाद, नवीं मुंबई, महाराष्ट्र का लघुकथा संग्रह है जिसमें किसी भी कथा से गुजरना शुरू करें तो एक लय, एक प्रवाह साथ–साथ चलना शुरू करता है, पर जो एक खास विशेषता इनकी कथाओं में है वह यह कि बड़ी आत्मीयता के निकट से फुटकर हमें कुछ–न–कुछ कह जाती है और हमें ठिठक कर सोचने के लिए विवश होना पड़ता है।

वस्तुतः हमारे साहित्य, संस्कृति और कला के मूल में ही लोक हैं। भारतीयता की जड़ें ही लोक में हैं। बाजारवाद और भूमण्डलीकरण की पूंजीवादी सोच ने हमारे साहित्य, संस्कृति और कला पर विपरीत प्रभाव डाला है। आज श्रेष्ठ परंपराओं का संरक्षण जरूरी है। हम अतीत को पूरी तरह विस्मृत नहीं कर सकते। अतः लोकजीवन में आ रहे बदलावों और उनके आर्थिक पहलुओं पर लघुकथाएँ लिखीं जानी चाहिए। कथाकार की सकारात्मक सोच के द्वारा ही रचनाओं से बेहतर समाज–निर्माण की प्रेरणा मिलती है। मुद्दे कई एक हो सकते हैं। उन पर गम्भीरता से चिंतन कर ऐसी लघुकथाओं का सृजन करना चाहिए जिनसे विधा की साख और नैरंतर्य बना रहे। संवेदना का विस्तार तथा विचारधारा और किस्सागोई में समन्वय बना रहे।

एक जागरूक लघुकथाकार के रूप में सेवा सदन प्रसाद की लगभग 101 लघुकथाओं का उल्लेखन इस संग्रह में हुआ है। इन कथाओं से हमें इनकी सूक्ष्म और मौलिक दृष्टि का एहसास होता है। प्रतीकात्मकता इनकी कथाओं की बड़ी ताकत है। 'और अमीर जाग उठा', 'आज का रावण', 'और सावित्री हार गई', 'संवेदना' आदि कथाएँ कथ्य, शिल्प, भाषा और विचार की दृष्टि से अद्भुत रचना है, जिसका असल मकसद परिवर्तन लाना है। लोगों को धर्म, जाति, सम्प्रदाय के खांचों में बाँट कर नफरत फैलानेवालों के खिलाफ रची गई अन्य सशक्त रचनाएँ भी आकर्षित करती हैं। 'उतरन', 'दहशत', 'पत्थर के रूप', 'प्रायश्चित', 'भूखा बचपन', 'मैं बेटी नहीं जनूँगी' आदि कथाएँ प्रेम, करूणा और समर्पण के मनोविज्ञान की विचारोत्तेजक रचनाएँ हैं। परिस्थितियाँ बदलते ही जिम्मेवारियाँ, निर्भरता और प्रेम का स्वरूप कैसे स्वाभाविक रूप से बदलता है इसके तथ्य पर इनमें संकेत मिलता है।

'गलतफहमी', 'छड़ी', 'जागरूकता', 'झाँसी', 'पिछला दरवाजा' आदि कथाओं में आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं एवं त्रासदियों से रू–ब–रू हुआ जा सकता है तथा इसमें गाँव के जीवन–समाज की संरचना से लेकर नगरी यथार्थ की भीतरी–बाहरी परतों तक आवाजाही मिलती है जिसमें बदल रहे समाज की अनेक छवियाँ हैं। इनकी इन कहानियों का वैविध्य जितना व्यापक है उन्हें कहने का तरीका उतना ही आत्मीय जो गहराई तक झंकृत कर जाता है।

'नारीवाद', 'भ्रूण हत्या', 'माँ एक जरूरत', 'मजूरी', 'मैं बेटी नहीं जनूँगी', 'मेरी माँ' आदि कहानियों में नारी संवेदना के अन्तर्गत विभिन्न बिन्दुओं–परंपराओं में जकड़ी आधुनिक और परंपरावादी मूल्यों में संघर्षरत नारी के विविध रूप, वर्तमान युग की समस्याओं में जूझती नारी पर प्रकाश डाला गया है जिसमें सामाजिक, नैतिक मूल्यों के अन्तर्गत पारिवारिक विघटन, स्त्री–पुरुष संबंध, वर्गभेद एवं मानवीय संस्कारों के चित्रण का विस्तृत समावेश किया गया है।

'मुखौटा', 'मोहभंग', 'युद्ध की विभीषिका', 'वोट बिकता है', 'वाटस्प की दुनिया', 'सत्ता सुख आदि कहानियों में इन्होंने राजनीति से लेकर उच्च स्तर की राजनीति में व्याप्त विसंगतियों, भ्रष्टाचार, उच्छृंखलता, अन्तर्कलह आदि पर सीधी चोट की है। अन्य कहानियों में भी विभिन्न विषयों व समस्याओं का, विशेष रूप से सुख–दुःख, प्रेम जैसे मनोभावों का भी इसी प्रकार की बारीकी और रोचक शैली में प्रतिपादित किया है। इनकी कहानियों में दलित–विमर्श, स्त्री–विमर्श, सामाजिक–विमर्श, मनोविश्लेषण व अन्य तमाम प्रकार की विशिष्ट एवं उल्लेखनीय बातें सशक्त, प्रभावी एवं यथार्थपरक है।

सेवा सदन प्रसाद इस विधा के संवर्धन के लिए पूरे तन, मन और समर्पण भाव से एक जुनून की मानिंद जुड़े रहते हैं। इनके कई एक लघुकथा संग्रह प्रकाशित हैं– 'टुकड़ा–टुकड़ा सच', 'सच का दर्पण', 'अंतः प्रेरणा', 'मेरी सर्वश्रेष्ठ लघुकथाएँ' और 'शब्द लिखेंगे इतिहास' (साझा संकलन)। जबकि सार्थक और सारगर्भित लघुकथा लिखना अत्यंत कठिन और चुनौतीपूर्ण काम है। प्रभावी लघुकथा के लिए गहन चिंतन और धैर्य की आवश्यकता होती है। धैर्य रचनात्मकता की राह की बड़ी पूँजी है जो इन्हें प्राप्त है। इन्होंने इसके आकार–प्रकार के अतिरिक्त उसके सिद्धांत और विचार पक्ष पर गहराई से विचार किया है। घटना में जहाँ व्यवस्था–विरोध या अंतर्विरोध दर्शाया गया है वहाँ व्यंग्य भी अपनी जगह बना पाया है। रचना लेखक के व्यक्तित्व का दर्पण होता है। सामाजिक सरोकारों को व्यक्त करती इनकी लघुकथाएँ एक सजीव चित्रण हैं। कथा में कहीं–कहीं अभावग्रस्त व्यक्ति के हिस्से में जो है उसे भी सम्पन्न वर्ग झपट लेने को आतुर रहते हैं।

कलात्मक अंदाज में प्रस्तुत इनकी कथाएँ संकेतात्मक शैली में अच्छी रचनाएँ हैं।

समीक्षा

6. मैं तो हूँ अलमस्त

'मैं तो हूँ अलमस्त' सुमन आशीष : वरिष्ठ अध्यापिका फुलेरा, जयपुर का यह गज़ल संग्रह जन–चेतना से सम्बद्ध एक सफल प्रस्तुति है जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में समसामयिक संदर्भों में हृदय की मार्मिक अनुभूतियों की संक्षिप्त, सारगर्भित एवं सशक्त काव्याभिव्यक्ति है, जिसकी अपनी निजी चिंतन प्रक्रिया, निजी भाषा एवं निजी उपमाएँ हैं।

अमीर खुसरो की अनेक गज़लों में निहित हिन्दी रंग ने हिन्दी गज़ल की संभावनाओं को गहरा रंग प्रदान किया है। पूर्व भारतेंदु युग से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों के रचना संसार में यत्र–तत्र गज़ल शैली के दर्शन होते हैं। दुष्यंत कुमार ने अपनी गज़लों को आधुनिक संदर्भों से जोड़कर हिन्दी गज़ल को कथ्य के व्यापक आयाम प्रदान किए हैं। उन्होंने हिन्दी गज़ल को सामाजिक जन–चेतना से सम्बद्ध करके जो लोकप्रियता अर्जित की, उससे प्रभावित होकर हिन्दी गज़लकारों का एक लंबा काफिला अवतरित हुआ। हिन्दी में गज़ल की यह समृद्ध एवं सम्पन्न परंपरा गज़ल के स्वर्णिम भविष्य की द्योतक है।

कवयित्री सुमन आशीष काफी पत्र–पत्रिकाओं में छपती रही हैं, गज़ल के अतिरिक्त इनकी रचनाएँ कहानी, कविता, दोहा, संस्मरण आदि प्रकाशित हैं। इनकी रचनाओं में प्रेम, सौंदर्य, सुकुमारता, माधुर्य एवं संगीतात्मकता के साथ–साथ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक विसंगतियों और विद्रूपताओं के स्वर मुखरित हैं। इनके गज़ल संग्रह में अभिव्यक्ति की कलात्मकता, विषय–वस्तु की मौलिक गरिमा, मानव जीवन से जुड़ी समस्याओं की अधिकता, मार्मिकता का जीवन के संस्कारों एवं संस्कृति से गहरा एवं गंभीर सरोकार रहा है। भाषा की सरलता, विचार गर्भिता, हृदयस्पर्शी भाव तथा अपनी सूक्ष्म दृष्टि को लेकर इनकी गज़ल की दुनिया का प्रथम प्रवेश अच्छा ही लगता है। इनकी गज़लों में एक विशेषता तो है, कि ये कम–से–कम शब्दों में बहुत बड़ी बात कह जाती हैं। समय के महत्व को बताने के लिए ज्योति की किरणें बनकर प्रकाश फैलती, समाज को ज्ञान का आलोक देती इनकी गज़लें कहती हैं कि प्रकृति के इस विशाल फलक में निहित हर तत्व, सजीव और निर्जीव सबके लिए समय एक समान है। उसकी मनोवैज्ञानिक या नैतिक गंभीरता जो कुछ भी हो हमें उसके ही फैसले को प्राथमिकता देनी पड़ती है—

"बड़ा कोई नहीं संसार में सब फैसले उसके
नाचता है इशारों पे बड़ा वो वक्त होता है।"

इनकी गज़लों में वैयक्तिक जीवन तथा सामाजिक जीवन का अत्यंत व्यापक और उदार चिन्तन दृष्टिगोचर होता है। इन्होंने सामाजिक संवेदना, पतोन्मुख सामाजिक व्यवस्था को वाणी देने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। समाज की वेदना को अपनी वेदना समझकर अपने भाव में अभिव्यक्त किया है—

"तितलियों के पर नहीं फिर कैंचियों पे धार क्यों
इस चमन की शांति पर है खौफ की तलवार क्यों
बेचकर ईमान अपना जीत का सौदा किया
झूठ जाहिर है मगर उनका हुआ सत्कार क्यों
नष्ट सारे ख्वाब कलियों के जिन्होंने कर दिए
उनकी महिमा हो गयी है आज अपरम्पार क्यों।"

कवयित्री ने गज़ल में प्रेम की अभिव्यक्ति भी सशक्त व सूक्ष्मता से की है जिसमें प्रेम के लौकिक–अलौकिक पक्ष को उद्घाटित किया है तथा नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालकर उसकी पीड़ा को भी उजागर किया है—

"बात सारी मान लेगी वायदा करती 'सुमन'
तू अगर कुछ कायदों की बात भी तो सुन जरा
आज मीरा हो गयी है नृत्य को तैयार फिर
कृष्ण तू भी तो बजा अब बाँसुरी की धुन जरा।"

सुमन जी ने सामाजिक, राजनीतिक विषमताओं के साथ–साथ प्रकृति और पर्यावरण को भी अपनी गज़लों में समुचित स्थान दिया है तथा उसके साथ हो रहे अत्याचार व उनके दोहन पट झकझोर देनेवाली चर्चा भी की है—

"पत्थर, खंजर, धूप, कुल्हाड़ी, लाठी सब
पेड़ बेचारा जाने क्या–क्या सहता है।"

इन्होंने प्रायः हर एक पहलू को लेकर गज़ल का सृजन किया है। वर्तमान समय के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि विभिन्न परिस्थितियों को लेकर कलम चलायी है। मनुष्य का जीवन किस प्रकार चक्रव्यूह में फँसा है, उसे वाणी देने का भी इन्होंने प्रयास किया है। इनकी गज़लों में साहित्य के प्रति गंभीरतापूर्वक चिंतन किया गया है जो समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है—

"बरगला सकती नहीं संसद किसी भी चाल से
जगती जनता निकाले बाल गहरी खाल से
भूख से मरते सदा आधा–अधूरा सत्य है
लोग मरते हैं पड़ोसी के खुशी भर हाल से
याद है उनको सभी चालाकियाँ उस व्याध की
दूर रहते हैं तभी पक्षी लुभाते जाल से
छाँव पाने के लिए मीलों नहीं मिलते शजर
नोंच डाली आदमी ने पत्तियाँ हर डाल से
आज भी कितनी अकेली नारियों की वेदना
कब मिटेगी पीर नारी के अभागे भाल से।"

आज हिन्दी गज़ल महफिल से बाहर निकल कर जनता की जागृति का एक माध्यम बन गयी है। वह जनता की समस्याओं को वाणी देकर समाधान ढूँढने के प्रयास कर रही है। गज़ल के शेर में काफिया, रदीफ, मकता, मतला और मिसरा की भी बहुलता देखी जाती है। खासकर इनकी भावना जो शब्दों के माध्यम से परिलक्षित होती है वह अपने आप में सफल जान पड़ती है। वास्तव में सम्प्रेषणीयता और सादगी मन को भा जाती है।

श्वेतवर्णा प्रकाशन, नोएडा

समीक्षा

दयानन्द जायसवाल

7. सुधियों की नागफनी

विजय 'गुंजन' दानापुर, पटना का यह नवगीत संग्रह उद्‌बोधन, आवेग और एक उमंग–तरंगित मन का उत्साह भर नहीं है बल्कि समय की विद्रूपताओं से सीधी मुठभेड़ करते युगीन यथार्थ का खड़ा बोध भी है, जिसे जन और उसके जीवन सन्दर्भो के बीच से इन्होंने पाया और अर्जित किया है। इनकी उस अनुभूति की सघन संरचना, बेहद आत्मीय, पारिवारिक और ऐन्द्रिक बिम्ब–संयोजन भावकों की संवेदना से सहज तादात्म्य स्थापित करने में सक्षम है।

इनके नवगीतों की बहुरंगी दुनिया में प्रवेश करना एक नए अनुभव से गुजरना है, जिसके रग–रग में लोक–जीवन की खुशबू और मिठास, लोक–लय की सहज तरलता और माधुरी एवं वैचारिक अंतर्वस्तु में संश्लिष्ट जीवन की सम्पूर्ण जटिलता और संघर्षधर्मिता का आदिमराग अन्तरग्रन्थित है। इनके नवगीतों में भारतीय सामंतवाद के पतनशील जीवन–मूल्यों, साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण की नृशंसताओं और उपभोक्तावाद की संवेदनहीनताओं के विरुद्ध तीव्र प्रतिरोध और इन अमानवीयताओं के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान है। इसके बावजूद इनके नवगीतों में लय, छंद, बिम्ब, प्रतीक, भाषा–शिल्प, पारदर्शीय और कलात्मकता है।

नवगीत आधुनिक युगबोध सम्पन्न एक ऐसी विधा है जो रागात्मकता के साथ–साथ बुद्धि, तर्क और यथार्थ को ग्रहण करने में पूरी तरह समर्थ है। आधुनिक हिन्दी कविता में नवगीत एक ऐसी विधा है जिस पर आलोचकों की दृष्टि कम जाती है। स्वतंत्र विधा के रूप में विकसित नवगीत की संरचना में हमें काव्य के भाव और सौंदर्य की कलात्मक अभिव्यक्ति दिखाई देती है। नवगीत के कलेवर में सामाजिक संरचना में होने वाले परिवर्तनों की छवि भारतीय जीवन के सातत्य का प्रत्यक्षीकरण है। नवगीत के स्वरूप और उसमें संरचनात्मक परिवर्तनों की पड़ताल करने से पहले हमें नवगीत के ऐतिहासिक बदलावों, उसकी सामाजिक और सांस्कृतिक अपेक्षाएँ तथा समाज में चल रही अनेक घटनाओं को देखना आवश्यक है, जिनके बीच नवगीत ने अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखा। स्पष्ट है नवगीत की विकास यात्रा उसमें आए संरचनात्मक परिवर्तनों की यात्रा ही है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला से लेकर बच्चन, धर्मवीर भारती आदि कवियों ने अपने गीतों में पारंपरिक रूप की अपेक्षा लीक से हटकर नए प्रतिमान स्थापित किए। इन प्रतिमानों से ही नवगीत के कलेवर की सृष्टि होने लगी। क्रमशः आधुनिक बोध, बदलती सामाजिक स्थितियाँ, भौतिकता की अति, आत्मीय रिश्तों की टूटन और जीवन की लयात्मकता आदि नवगीत का कथ्य बने।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना द्वारा सम्मानित विजय 'गुंजन' का ग़ज़ल एवं दोहा संग्रह भी बहुत ही चर्चित एवं प्रतिष्ठित रचना है। इसी प्रकार इनका 'सुधियों की नागफनी' नवगीत संग्रह समकालीन जिंदगी के संवेदनशील क्षणों के दस्तावेज हैं। इस संग्रह में इन्होंने कुल 65 गीतों को सहज भाव से सजाया–सँवारा है जिसमें नागफनी की तरह तीक्ष्ण धारवाले काँटों से संचेतनामुक्त जनों को यथार्थ के फलक पर लाकर संवेदना का चटकीला रंग भरने का प्रयास किया है। इनके प्रथम नवगीत का सौंदर्य ही सामाजिक संघर्षों के बीच से निर्मित हुआ है जो जीवन के संतापों की बखिया उधेड़ता है और वहीं से उस धूप का इंतजार करता है जो उसके दुःखों को कम करे।

समकालीन जीवन की आपाधापी, आकांक्षाओं की तेज स्पर्धा में कैसे हमारी मनुष्यता अपना अर्थ खोती है और हमारी दैनन्दिन जिंदगी में जहाँ रंग और गंध अपने खूबसूरत उपमानों के साथ उपस्थित थे, अब उनका अहसास भी नहीं होता—

"सृजन हुए बाधित जब–जब
साँसों की डोर तनी
मरुस्थली प्रतिबिम्ब की तरह
मन को सदा छले
हो मलिन धीरे–धीरे
सिकुड़े जब दिवस ढले
नहीं विगत कई वर्तमान पर
रेखा एक बनी
चुभे हृदय में पल–पल अब
सुधियों की नागफनी।"

इन्होंने आम आदमी के दुःख–दर्द, गरीबी, भूखमरी, बेकारी और अभाव की त्रासदी को बहुत नजदीक से देखा है इसलिए यह शोषित–पीड़ित समाज के दर्द को अपने गीतों में बहुत प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है—

"गरलमय अब हो गया /परिवेश है
अमन का दिखता नहीं / उन्मेष है /
नभ–कुसुम की कल्पना / मन में यथा
गुलमोहर किससे कहे / अपनी व्यथा।"

जहाँ ये नवगीत की जनोन्मुखी शाखा जनवादी गीतों के प्रमुख हस्ताक्षर हैं, वहीं मानव जीवन से जुड़े अन्य पक्षों में भी संवेदना की गहराई का अवगाहन किए हैं—

"आज कुटिलता गली–गली में
नृत्य कर रही है
सबके अंदर वर्ण–भेद का
जहर भर रही है
बड़े–बड़े व्यक्तियों का भी
कद दिखता अब बौन
घृणा–द्वेष की गहरी खाई को
अब पाटे कौन।"

इनकी रचनाओं में जहाँ मानवीय चेतना का यथार्थवादी युग चिंतन का एक धारदार तेवर देखने को मिलता है वहीं ग्राम्य जीवन का मनोहारी–लोक सौंदर्य की कोमल भावना भी दृष्टिगत होती है जहाँ प्रेम और सौहार्द का परिवेश उपस्थित हो जाता है—

हृदय में रह–रह
उड़ेले मेह
प्रियतम हुए निर्मोह मौके ऐन
काटते कटती नहीं यह रैन
याद के वन में भटकता चैन।"

इनके नवगीत जितने सहज लगते हैं, भीतर की परतों में वे कहीं अधिक संवेगात्मक और मर्म को छूने वाले हैं। संघर्ष भरी जिंदगी के बीच जीने की जिद्द इन गीतों के शब्द–शब्द में भरी है।

'सुधियों की नागफनी', आ. विजय गुंजन, अनुसंधान प्रकाशन, गाजियाबाद

आलेख

साहित्य और मनोविज्ञान का रिश्ता

डॉ. अमर सिंह वधान
सेक्टर 24–डी, चंडीगढ़
मो.– 9876301085

यह कहना निराधार नहीं है कि साहित्य जीवन से प्रेरणा ग्रहण करता है, जीवन का विकास मनोविकारों पर आधारित है और मनोविकारों का मूलाधार मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान की स्थिति जीवन की अनेकानेक अभिव्यक्तियों में है। अतः मनोविज्ञान और साहित्य में साधन और साध्य का रिश्ता बनता है। यह प्राचीन काल से ही विविध मनोविकारों में प्रस्फुटित हुआ है और उसी से साहित्य जीवन का पर्याय बनकर विकासोन्मुखी रहा है। देखा जाए तो आधुनिक भारतीय एवं विश्व साहित्य मनोविज्ञान के अनेक रहस्यों की सार्थक अभिव्यक्ति है। मानव विचारशील प्राणी होने के नाते सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ को जानना और समझना चाहता है। लेकिन उसकी सबसे अधिक अभिरुचि का कारण है 'मानव'। मानव के प्रति मानव की चिन्ता को समझने, परखने और बूझने का प्रयत्न मनोविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र के अंतर्गत आता है।

गौरतलब है कि आरंभ में मनोविज्ञान का सामान्य अर्थ 'आत्मा का विज्ञान' के रूप में लिया जाता था। यूनान की पारंपरिक गाथाओं में 'साईकी' का वर्णन एक सुन्दर कुँआरी कन्या द्वारा किया गया है, जिसके तितली के समान सुन्दर पंख थे। उस समय साईकी आत्मा का प्रतीक तथा तितली मानव की नश्वरता का प्रतीक माना जाता था। मनोविज्ञान विषय के विकास में प्लेटो, अरस्तू, डेकार्क, स्पीनोजा, लाइबनीज, लॉक आदि विचारकों ने बहुत योगदान दिया है। आगे चलकर कुन्ट, गाल्टन, टिचनर, कैटेल, थार्नडायक, एंबिघास जैसे विद्वानों ने मन के अध्ययन के इस विषय को वैज्ञानिक रूप दिया। फ्रायड, एडलर और युंग ने असामान्य व्यक्तियों के अध्ययन के आधार पर एक महत्वपूर्ण मनोविश्लेषणवाद सिद्धान्त की स्थापना की। वाट्सन व्यवहारवाद और विलियम मैक्ड्रगल प्रयोजनवाद के प्रवर्तक बने। इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि मनोविज्ञान मन का विज्ञान है, व्यवहार का विज्ञान है, मनुष्यों की क्रियाओं का विज्ञान है और है भाव–विचार का विज्ञान भी।

जहाँ मनोविज्ञान भावों और मनोवेगों का अध्ययन है, वहीं साहित्य मानव जीवन, भावों एवं विचारों का लेखा–जोखा है। इस तरह दोनों में मानव जीवन के अनुभवों, उसकी क्रियाओं तथा मानसिक वृत्तियों का निरूपण होता आया है। ज्यों–ज्यों मन संबंधी ज्ञान की वृद्धि होती गयी, त्यों–त्यों साहित्य की प्रवृत्ति भी मन के सूक्ष्म निरुपण की ओर होती गयी। दिलचस्प है कि साहित्य मनोविज्ञान की नवीनतम खोजों एवं शोधों का स्वागत करने के लिए सदैव उत्सुक रहा है। हर युग और हर देश का साहित्यकार एवं कलाकार अन्तर्मन का अनुशीलन करता है और मन की ऊपरी सतहों को भेदता हुआ उसके अंतर में उतर जाता है। फ्रायड ने एक स्थान पर कहा है कि सब प्रकार की दबी हुई वासनाओं, निषेधों और तृप्तियों को निकाल डालो, कुछ भी मन में न रखो। जो कुछ भी मन में हो खुलकर कहो नहीं तो तुम्हारी कला झूठी हो जाएगी। आश्चर्य नहीं कि अपनी कला को सत्यवादी बनाने के लिए 'अकहानी' और 'अकविता' के रचनाकारों ने अपनी कृतियों में यही कुछ किया।

मनोविज्ञान के प्रभावाधीन साहित्य में यह धारणा भी प्रचलित रही है कि 'प्रतिभा' अथवा 'काव्य शक्ति' एक क्षतिपूर्ति हुआ करती है। मिसाल के तौर पर होमर कृत 'ओडेसी' में कहा गया है कि काव्य की देवी ने डेमोडोसस की आँख तो ले ली, लेकिन उसे काव्य रचना का सुगम वरदान वैसे ही दे दिया जैसे एथेना ने अंधे टायरीसियस को त्रिकाल दृष्टि प्रदान की थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि अंगक्षति और प्रतिभा इन दोनों में हमेशा इतना सीधा संबंध नहीं पाया जाता और शारीरिक व्याधि या विकृति होने के स्थान पर वह मानसिक या सामाजिक भी हो सकती है। स्मरण करा दें कि पोप कुबड़ा और बौना था, बायरन के एक पाँव में फीलपाँव हुआ था, प्रूस्त अंशतः यहूदी वंश का था और वह श्वास रोग और स्नायु रोग का रोगी था, जॉन कीट्स का कद बहुत छोटा था और टॉमस वुल्फ दूसरे लोगों की अपेक्षा बहुत लंबा था। नगेन्द्र ने, इस संदर्भ में, अपनी पुस्तक 'विचार और अनुभूति' (पृष्ठ 8–9) में बड़ी सुन्दर बात कही है, "समस्त साहित्य हमारे जीवनगत अभावों की पूर्ति है। जो हमें जीवन में अप्राप्त है, उसी को हम कल्पना में खोजते हैं।" इस सत्य कथन पर भी सवाल नहीं उठाया जा सकता कि जीवन की क्षणिकता, जीवन के अशिव और उसकी कुरूपताओं से हार मानकर ही तो मानव ने 'सत्य, शिव, सुन्दर' की कल्पना की थी।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो मनुष्य के अन्तःकरण में जो भी भावनाएँ कार्य करती रहती हैं, वे व्यावहारिक जीवन के संघर्षों की ही सूक्ष्म अभिव्यक्ति है। लेकिन इनके प्रकाशन के लिए एक खास किस्म के अपनत्व की आवश्यकता पड़ती है। साहित्यकार की व्यक्तिगत भावनाएँ समाज और जीवन के संघर्षों की वैसी ही प्रतिक्रिया होती है जैसी रासायनिक प्रयोगशाला में विभिन्न यौगिक और मिश्रणों की होती है। इस प्रक्रिया में मस्तिष्क का अपना निर्णय होता है जिस पर न समाज का कोई प्रतिबंध होता है और न ही जीवन की किसी विशेष धारा–प्रवाह का ही। बिना शक, साहित्य इसी मानसिक निर्णय का रूप है। एक ताजा उदाहरण देकर हम इसे इस प्रकार समझ सकते हैं। केरल के पालकाड जिले में 03 जून, 2020 को कुछ शरारती तत्वों ने एक गर्भवती हथनी को अनानास में पटाखे मिलाकर खिला दिए और खाते समय उसके मुँह में पटाखों का जबर्दस्त विस्फोट हुआ। कुछ समय पश्चात् हथनी एवं पेट में पल रहा बच्चा दोनों तड़प–तड़प कर नदी में मर गए। इस दुःखद एवं निर्दयी घटना का समाचार सुनकर विभिन्न मानव मस्तिष्कों पर अलग–अलग प्रतिक्रियाओं का होना स्वाभाविक है। मसलन, एक कवि इस घटना से प्रेरित होकर करुण काव्य लिख सकता है, एक कहानीकार कहानी लिखने का प्रयत्न करेगा। नाटककार नाटक लिखेगा अथवा एक साधारण व्यक्ति क्रोधित होकर इस दुःख के कारण का अन्त करना चाहेगा। लेकिन इस प्रकार की प्रतिक्रिया यहीं तक ही सीमित नहीं रहती। बारीकी का तथ्य यह है कि मानव मस्तिष्क अपना निर्णय देते समय किसी प्रतिबंध की अपेक्षा नहीं रखता।

यह बात भी प्रामाणिक तौर पर कही जा सकती है कि यदि देश में कहीं अकाल पड़ता है तो इसे जानकर साहित्यकार, वैज्ञानिक और कलाकार अपनी करुण संवेदनाओं से पलायन नहीं कर सकता। दिल दहलाने वाली हर घटना कलाकार को प्रभावित करेगी ही। होमर, वर्जिल, विलियम शेक्सपियर, विलियम वर्डस्वर्थ, लॉर्ड बायरन, पी.बी. शेली, लॉर्ड एल्फर्ड टेनिसन आदि पाश्चात्य कवियों से लेकर भारतीय वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, सूरदास, पंत, निराला, दिनकर, महादेवी वर्मा आदि सभी कवियों में अमुक घटना से प्रेरित–प्रभावित होने तथा मस्तिष्क पर होने वाली प्रतिक्रिया

का सच विद्यमान रहा है।छनकर आया अकाट्य तथ्य यह है कि साहित्य न तो समाज का दर्पण है और न 'स्वान्तः सुखाय' की अभिव्यक्ति है।'कला कला के लिए' सिद्धान्त भी भ्रामक है। अत्याधुनिक मनोविज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं वैज्ञानिक आश्चर्यमयी प्रगति ने मानव मस्तिष्क का अपनी शैली में साहित्यिक और सांस्कृतिक रूपान्तरण कर दिया है।उपमाएँ, प्रतीक, बिम्ब, सौन्दर्यात्मक झलकियाँ, अलंकारिक अभिव्यक्तियाँ आदि प्रयोगों का स्थान उपजी गयी मानसिकता एवं सीधे–सादगी भरे संप्रेषण ने ले लिया है। 21वीं सदी के प्रथम दो दशकों में रचित साहित्यिक कृतियाँ इसका चमकीला प्रमाण हैं।

मनोविज्ञान की गवाही के मुताबिक जीवन में किसी भी घटना का प्रभाव साहित्यकार के मनोविकारों को उत्तेजित करता है।इसी वजह से उसकी रचना में यथास्थिति क्रोध, विद्रोह, ईर्ष्या, ग्लानि, क्षुब्धता, सहानुभूति, प्रेम, स्नेह, करुणा, सहयोग आदि भाव प्रकट होते हैं।ज्ञातव्य है कि 'क्रौंच वध' की घटना ने वाल्मीकि को अन्दर तक द्रवित कर दिया था और रत्नावली की डाँट–फटकार ने तुलसी को रामभक्ति की ओर मोड़ दिया। एक अन्य मनोवैज्ञानिक सत्य यह है कि मानव हृदय स्थल में दबी हुई मनोविकारी भावना किसी मिलती–जुलती घटना से प्रेरणा पाकर तीव्र हो जाती है और यही भावना साहित्य के निर्माण में अपनी सक्रिय भूमिका निभाती है।वैसे साहित्य में मनुष्य का क्रोध और क्षोभ संयमित होता है।त्रासदीपूर्ण रचनाओं में तो गम और खुशी का विरेचन होता है जिसकी लंबी इबारत अरस्तू ने अपने 'विरेचन सिद्धान्त' में लिखी है। यह विरेचन प्रक्रिया शेक्सपियर के 'हैमलेट', 'मैकबेथ', 'किंग लियर' और 'ओथेलो' त्रासद नाटकों में अपनी जीवंतता के साथ दृष्टिगोचर होती है। अचरज नहीं कि ऑडिपस में प्रयुक्त 'इलेक्ट्रा कॉम्प्लेक्स' एवं प्रिंस हैमलेट की 'टू बी ऑर नोट टू बी' मनोग्रंथि सिग्मंड फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त का बीज आधार बनी थी। जैनेन्द्र, अज्ञेय, निर्मल वर्मा आदि के उपन्यासों का मनोविश्लेषण की कसौटी पर व्यापक स्तर पर विवेचन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन हुआ है।

एक अन्य मनोवैज्ञानिक कोण से देखें तो साहित्य और कला में दबे हुए भावों की अभिव्यक्ति स्मृति के जरिए होती है।यह भी देखा गया है कि निर्जीव अथवा निष्क्रिय मनोविकारों को जाग्रत करने के लिए साहित्यकार कल्पना का सहारा लेता है।यह सिद्ध है कि साहित्य में स्मृति, कल्पना और अनुकरण का बहुत महत्व होता है। अनुकरण को जीवन की एक प्रतिक्रिया समझते हुए समस्त साहित्य का मूलाधार 'अनुकरण' को ही माना गया है। साहित्यकार जब अनुकरण करता है, तब वह वस्तु को उसी रूप में प्रकट न करके उसे अपनी दृष्टि से देखता और परखता है।इसके बाद ही बड़ी विवेकशीलता से उस पर अपने व्यक्तित्व की मोहर लगाता है। वह कुछ और गहराई में उतरकर उस वस्तु के अन्तर्तम सौन्दर्य की व्याख्या तक करता है। यहाँ इस तथ्य को भी रेखांकित करना जरूरी है कि साहित्यकार अथवा कलाकार किसी वस्तु की यथार्थता से पूर्णतया संतुष्ट इसलिए नहीं होता क्योंकि वह उसमें कुछ ऐसी विशेषता देखना चाहता है, जो उस वस्तु को अधिक सौन्दर्य अथवा आदर्श प्रदान करे। ताज्जुब नहीं कि तीव्रता से अनुभव किया गया यही मानसिक अभाव कलाकृति को जन्म देता है।इसमें अनुभूति की तीव्रता, भाषा की शक्ति एवं प्रतिभा की भूमिका का अपना अलग महत्व है।साहित्यकार अपने हृदय में संचित मनोविकारों की शक्ति से अपने ही भावों को व दूसरे की संवेदनाओं को जगाने की चेष्टा करता है।उसकी ये चेष्टाएँ व्यापक एवं शाश्वत होती हैं।रूसो, वाल्टेयर, मान्टेसक्यू, बर्नार्ड शाह, मिसेल फूको, काफ्का, सार्त्र, कबीर, गुरु नानक, रविदास, शेख फरीद, विवेकानन्द, गाँधी, राधाकृष्ण आदि ने मानवता को जो विचार एवं शाश्वत संदेश दिए हैं, वे युगों तक मानव समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध होते रहेंगे।

मानव–मूल्य की दृष्टि से देखें तो करुणा में पीड़ा छिपी रहती है।एक भावुक एवं सहृदय साहित्यकार के लिए इससे छुटकारा पाना मुश्किल है। ऐलिजाबेथ बैरेट ब्राउनिंग की कविता 'द क्राई ऑफ चिल्ड्रन' निराला की 'भिक्षुक' और 'वह तोड़ती पत्थर' तथा अमृता प्रीतम की 'आज आखां वारिस शाह नूं' (आज वारिस शाह से कहती हूँ) से उठती चीखों ने इन काव्यकारों को चुपचाप सोने नहीं दिया था।उनके हृदय से वेगमयी उद्‌गार ऐसे निकले थे, मानो किसी डैम का गेट खोल दिया हो।यह एक तरह से कर्तव्य की पुकार है, दायित्व को आमंत्रण है। पुकार और जिम्मेदारी को सामने खड़े देखकर रचनाकार सृजन क्षेत्र से पलायन नहीं कर सकता है।आत्माभिव्यक्ति मानव मन की स्वाभाविक दुर्बलता है, ऐसा मनोवैज्ञानिकों का मानना है। उसके अन्तःकरण में ऐसी उद्दीप्त भावनाएँ संचित रहती हैं, जिन्हें व्यक्त किए बिना उसे चैन नहीं मिलता। इन भावनाओं का आधार बाह्य जगत न होकर अन्तर्जगत होता है।

सिग्मंड फ्रायड ने कविता में काम–वासना की व्याख्या करते हुए बताया है कि जो काम–वासना हमारे व्यावहारिक जीवन में संतुष्ट रह जाती है, वही स्वप्न जैसी छाया के रूप में हमारे अंतर्मन को प्रभावित करती है और नतीजे के तौर पर कविता की सृष्टि होती है। फ्रायड ने यह भी बताया है कि कविता के रचनाकाल में कवि अर्धचेतना में रहता है और यह तथ्य उसके स्वप्न सिद्धान्तवाद में बड़ी पारदर्शिता से स्पष्ट है। क्रोचे का अभिव्यंजनावाद भी आत्माभिव्यक्ति को ही काव्य के जन्म का प्रमुख कारण मानता है।इसके मूल में सच्चाई यह है कि संवेदनशील साहित्यकार के हृदय में कुछ ऐसी अनुभूतियाँ क्रियाशील रहती हैं, जिन्हें रोके रखना कठिन होता है। फिर आत्माभिव्यक्ति को हृदय की सूक्ष्म संवेदना है जो प्रायः साहित्यकार की कृतियों में किसी–न–किसी रूप में मौजूद रहती हैं।लेकिन इस वास्तविकता को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि कवि की संवेदनाओं के उद्‌गम स्थान में उसकी अतृप्त इच्छाएँ होती हैं।

मनोविज्ञान में मानव मस्तिष्क की मुख्य तीन अवस्थाएँ बतलाई गई हैं– चेतनावस्था, अर्धचेतनावस्था एवं अचेतनावस्था। जिस घटना को साहित्यकार प्रत्यक्ष रूप से देखता है, उसे वह पूर्ण चेतनावस्था में ग्रहण करता है।मिसाल के तौर पर वाल्मीकि द्वारा क्रौंच वध घटना को देखना, प्रथम विश्व युद्ध (1914–18) के दौरान ब्रिटिश ट्रेन्च फौजी कवियों द्वारा मोर्चे पर लड़ते हुए युद्ध के भयंकर दृश्यों को देखना, निराला द्वारा अपनी पुत्री सरोज की मृत्यु का दृश्य आदि घटनाएँ पूर्ण रूप से चेतनावस्था में ग्रहण की गई थीं। इसी तरह 'तमस' उपन्यास में वर्णित देश विभाजन के समय की भयंकर घटनाएँ स्मृति के रूप में परिणत होकर अर्धचेतनावस्था का अंग बन जाती हैं। स्मृति के द्वारा इन घटनाओं की पुनरावृत्ति भी की जा सकती है।निराला कृत 'सरोज स्मृति', भीष्म साहनी का 'तमस' तथा विश्व साहित्य में रचित शोक गीत, शोक कविताएँ उदाहरण के रूप में रेखांकित की जा सकती हैं। मनोविज्ञान में इस स्मृति के पुनरावर्तन की प्रतिक्रिया को साहचर्य नियम की संज्ञा दी गयी है।

काव्य और कला में स्मृति का बहुत बड़ा महत्व है।भारतीय भाषाओं एवं विश्व की भाषाओं के कवियों तथा कलाकारों ने गुजरी बातों को स्मृति पटल पर लाकर बेहतरीन कृतियों की रचना की है। दूसरे के विरह–वेदना का वर्णन करते समय कवि अपनी विरहानुभूति को अभिव्यक्त करने लग जाता है। कादियाँ, शैफे, सी.जी. रोसेटी, राबिआ, मीरा, अंडाल, लल्लेश्वरी, हब्बा खातून, महादेवी, अमृता प्रीतम, मनजीत टिवाणा आदि कवयित्रियों ने अपने

संतप्त हृदय को स्मृति की आँच से ही तृप्त किया। इनमें से बहुत ने यादगार आध्यात्मिक काव्यों की सर्जना भी की। कलम रचनाकार का सच्चा साथी है और उसके हृदय तल पर स्थित खुशी अथवा गम को ईमानदारी से तट पर ला उँड़ेलती है। कलम से जो निकलेगा सच ही निकलेगा, एकदम प्रामाणिक और पारदर्शी। 'पैराडाइज लॉस्ट', 'द माइकिल', 'ओड टू ए ग्रेशियन अर्न', 'द वेस्ट लैंड', 'साकेत', 'कुरुक्षेत्र', 'अंधा युग', 'उर्वशी' आदि कृतियों के आर–पार देख सकते हैं। मानव मनोविज्ञान को ही कलम ने कागज पर उतारा। मनोविज्ञान के एक पन्ने से पता चलता है कि स्मृति की मूल सहायिका कल्पना होती है। इसके समर्थन में यह कहना है कि किसी भी विगत घटना का कोई स्थूल रूप मानव मस्तिष्क में नहीं रहता और उसे पुनर्जीवित करने के लिए कल्पना का आश्रय लेना पड़ता है। कल्पना के बल पर ही कवि दूसरे के विरह का तादात्म्य अपने विरह के साथ स्थापित करता है। चन्दबरदाई का वीर काव्य, अंग्रेजी ट्रेन्च कवियों की युद्ध कविताएँ और गुरु गोविन्द सिंह का ओजस्वी काव्य इसलिए उत्कृष्ट है कि इन रचनाकारों का युद्ध क्षेत्र का व्यक्तिगत अनुभव था। इसी क्रम में सी.जी. रोसेटी, महादेवी, अमृता प्रीतम और पंजाबी गीतकार शिव कुमार बटालवी की कविताओं में तरल विरह–वेदना की मौजूदगी इनके निजी जीवन अनुभवों का प्रतिफल है।

मार्के का तथ्य यह है कि साहित्य में कल्पना अभाव अथवा रिक्तता की पूर्ति करके एक सौम्य आदर्श की स्थापना करती है। बिना कल्पना के उपमा भी अपनी उड़ान नहीं भर सकती। अंग्रेजी रोमांसवाद और हिन्दी छायावाद के कवियों ने अपनी काव्य उपमाओं में कल्पना का पूर्ण उपयोग किया है। कल्पना एक विहग की मानिंद है, जो अपने चहेतों को साथ लेकर आकाश में विचरण करती है। पी.बी. शैली, रॉबर्ट फ्रॉस्ट, सुमित्रानन्दन पंत जैसे कवियों ने काव्य की ऊँचाई में कल्पना के महत्व को गहराई में समझा था। गद्य की सभी विधाओं में कल्पना का व्यावहारिक पक्ष अधिक मुखर रहता है। हासिल यह है कि अभिव्यक्ति, अनुभूति, संवेदना, स्मृति, कल्पना, अनुकरण, चेतन, अर्धचेतन, अचेतन, प्रतिक्रिया, मनोग्रंथि, तनाव आदि मनोवैज्ञानिक अवधारणाएँ साहित्य की रक्तवाहिनियों में प्रारंभ से ही प्रवाहित होती रही हैं, होती रहेंगी।

गज़लें

(1)
आ गया है नया साल फिर

दीप उम्दा जलाओ नया
आ गया है नया साल फिर
दूर कर लो अँधेरा सभी
आ गया है नया साल फिर
खूब श्रम कीजिए अब कड़ा
आ गया है नया साल फिर
कर दिखाओ ज़रा कुछ बड़ा
आ गया है नया साल फिर
मिलके सुलझाइये मसअला
आ गया है नया साल फिर।

हमीद कानपुरी
मीरपुर केन्ट, कानपुर

(2)
मस्त जीवन अगर बिताना है
गीत उम्दा सा गुनगुनाना है
पास जिसके बड़ा ख़ज़ाना है
जीत उसको चुनाव जाना है
आदमी वो यक़ीं से दाना है
है ख़ुदा एक जिसने माना है
रोज़ ख़ाना यहाँ कमाना है
मुक्तसर सा यही फ़साना है
उलझनों में नहीं कभी उलझे
जिसको ऊँचा मकाम पाना है।

(3)
देख बुरा क्यों लगता है
जो जैसा है अच्छा है
सुनता है वो कब किसकी
अपने मन की कहता है
अलबेला है वो जग में
अपनी धुन में रहता है
बच्चा चाहे जैसा हो
माँ को जां से प्यारा है
चाहे कोई कुछ कह ले
भारत देश हमारा है।

परम्पराएँ

गिरिजा शंकर मोदी
सिकन्दरपुर, भागलपुर
मो० : 6299550424

आज की पीढ़ी में
परम्पराएँ नहीं खिलतीं,
और न होती है उनमें कोई
रिश्तों की रजनीगंधा
और न कोई कमल क्रोड़
जहाँ बचपन जवान हो,

उखाड़ कर रख दी है
इस पीढ़ी ने भावनाओं की
सारी की सारी रंग लीकें,

दिवालें सपाट हैं,

समाते नहीं दिन
इस पीढ़ी में पूर्वजों के,
रिश्तों की जड़ें उखड़ वीरान हैं,
फटी आँखों में घर का
अंध कोना समा शान्त है,

रिश्तों के बाँध टूटे हैं
रुकता नहीं प्रवाह सुनामी मन में,
बाजारवादी पीढ़ी
पूंजी का परचम हो
फहरता है पूरा आकाश,

पीढ़ियों के बीच एक रेगिस्तान
अपने वितान में है,

रेगिस्तान तो अपना पन्ना खोलेगा ही
और शुतुरमुर्ग की गर्दन
रेत में समा खो जायेगी
जीवन के पतझड़ में।

आलेख

सर्जक और सर्जना के पक्षधर

अश्विनी कुमार दुबे
सेक्टर आर, महालक्ष्मी नगर
इंदौर–452010 (म.प्र.)
मो.– 9425167003

अशोक बाजपेयी का साहित्य में आगमन ऐसे समय में हुआ, जब संगठन और विचारधारा का वर्चस्व छाया हुआ था। हर नया कवि, लेखक और आलोचक या तो अपने प्रारंभ से संगठन में था या संगठन और विचारधारा से जुड़कर अपना भविष्य संवारना चाहता था। ऐसे समय में एक सोलह साल का युवक, सागर जैसे कस्बाई शहर में साहित्य और कलाओं को अपने ढंग से जानने–समझने की कोशिश करता है।

पारिवारिक माहौल वैसा ही था, जैसा आम मध्यवर्गीय परिवारों में होता है। पिता चाहते थे कि बेटा प्रशासनिक सेवा में जाए। माँ का बेटे पर अटूट विश्वास कि वह जो करेगा, ठीक ही करेगा। ताऊ आनंद मोहन बाजपेयी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शिष्य रहे और निराला, प्रसाद, जानकी वल्लभ शास्त्री से परिचित थे। बचपन में उनसे ही पुस्तकें पढ़ने का उत्साह मिला। बड़ी चचेरी बहन, मनोरमा साहित्य में रुचि रखती थी। स्कूल के एक अध्यापक लक्ष्मीधर आचार्य के सानिध्य में विशेष दिलचस्पी पैदा हुई।

साहित्य में जब भी कोई शुरुआत करता है, तो देखता है कि इस समय कैसा लिखा जा रहा है। विचारधारा से प्रेरित कविताएँ सामने थीं, प्रभावित करती थीं, इनमें से अपने लिए रास्ता बनाना था। शायद जीवन के प्रारंभ में ही उस युवा कवि ने यह जान लिया था कि जीवन बहुआयामी है। यदि साहित्य जीवन की व्याख्या और अनुभूतियों का प्रगटीकरण है तो वह एकपक्षीय कैसे हो सकता है? इस प्रश्न के साथ ही हम अशोक बाजपेयी के सर्जक मन का विकास देखते हैं।

सोलह साल का युवा, फिल्म संगीत का दीवाना क्यों न हो। उस समय के सभी प्रसिद्ध फिल्म संगीत के गायकों को उसने सुना और प्रभावित भी हुआ। फिर एक दिन अपने मित्र देवदत्त दुबे के साथ घूमते हुए म्यूनिस्पल स्कूल के हॉल में एक शास्त्रीय संगीत की सभा में जाने का मन हुआ, कौतुहलवश कि चलो देखते हैं, यहाँ क्या हो रहा है? वहाँ चमत्कार हो रहा था, पंडित कृष्णराव शंकर का गायन। श्रोता बहुत कम परंतु सब मंत्रमुग्ध। खोए हुए अपने आप में। पहली बार ऐसा गाना सुना दोनों मित्रों ने। लगभग दो घंटे वह गायन कार्यक्रम चला। दोनों मित्र आश्चर्यचकित सुनते रहे। पहली बार पता चला अरे, गाने तो ये हैं। फिर ढूँढ–ढूँढ कर शास्त्रीय गायन के रिकॉर्ड सुने गए। शास्त्रीय संगीत में वाद्य यंत्रों को सुना गया। बिना संगीत का व्याकरण जाने। संगीत की विधिवत शिक्षा के बिना। सिर्फ सुन–सुनकर उन्हें अच्छे संगीत की पहचान हुई। शास्त्रीय संगीत ने ही उन्हें अमूर्तन के आनंद से परिचित कराया। यह समझने में उन्हें देर न लगी कि सभी कलाएं अमूर्तन में पहुँचकर ही अद्वितीय हैं। काव्य, संगीत और चित्रकला की श्रेष्ठता नहीं है।

सैयद हैदर रजा और जे. स्वामीनाथन की पेंटिंग की ओर अशोक बाजपेयी आकर्षित होते हैं। रजा के चित्रों में वृत्त और बिन्दु उन्हें लुभाते हैं। इनमें ब्रह्मांड विज्ञान के साथ भारतीय दर्शन के चिन्ह हमें किसी और लोक में ले जाते हैं। कवि और कलाकार स्वामीनाथन के चित्रों में भारतीय दर्शन में प्रतिष्ठित चिह्नों, ओम, स्वास्तिक, कमल, सर्प आदि का रूपाकार और उनका काल्पनिक ज्यामितीय चित्रण एक खास तरह का प्रभाव पैदा करता है। अशोक बाजपेयी ने उसे आत्मसात किया और उससे प्रभावित हुए। इस प्रकार उनका सर्जक मन काव्य, संगीत और कला के क्षेत्र में रमता चला गया।

संगीत और कला में वे सर्जक न होकर उसकी उत्कृष्टता के प्रबल समर्थक हैं। साहित्य में काव्य और आलोचना उनकी सर्जना के आयाम हैं। काव्य को उन्होंने परंपरा से जानने की कोशिश की। बिना किसी के कहे उन्होंने अपनी मर्जी से नवीं कक्षा में हिंदी के बजाय संस्कृत पढ़ने का निर्णय लिया और स्नातक कक्षाओं में भी उन्होंने अंग्रेजी एवं इतिहास विषयों के साथ संस्कृत का अध्ययन किया। वह इसलिए कि मुझे अपनी काव्य परंपरा को जानना है। इस प्रकार अशोक बाजपेयी हिंदी काव्य में संस्कृत की परंपरा से आए। वे शुरू से ही यह कहते आए हैं कि जीवन बहु आयामी है, इसकी व्याख्या किसी फ्रेम में रहकर नहीं की जा सकती। परंतु वे स्थापित फ्रेम का विरोध भी नहीं करते, उसका अतिक्रमण जरूर करते हैं। एक ओर वे अज्ञेय से प्रभावित हैं दूसरी ओर रघुवीर सहाय, शमशेर और मुक्तिबोध के प्रभाव को भी वे मुक्त भाव से स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार अशोक बाजपेयी का काव्य संसार खासा विस्तृत और व्यापक है। 'शहर अब भी संभावना' से उनकी काव्य यात्रा शुरू होती है। जैसा मैंने पहले ही कहा कि जब वे शुरू कर रहे थे, तब साहित्य में एक खास किस्म के लेखन का आग्रह था। वे भी वैसा लिखते हुए मुख्यधारा में आ सकते थे। परंतु उन्होंने धारा से बाहर जो छूट रहा था, उसे समाहित करते हुए अपना रास्ता चुना। वे अपने काव्य में प्रेम की बात करते हैं। कभी जीवन में प्रेम अशेष हो सकता है? वे परिवार की बात करते हैं। उन्होंने दिदिया(माँ) पर कविताएं लिखीं। अपनी आसन्न प्रसवा माँ पर उनकी प्रसिद्ध कविता है। ऐसी कविता हिन्दी में भला किस कवि ने लिखी है। उनकी कविता में पुरखे हैं। वे कहते हैं, "हम अपने पूर्वजों की अस्थियों में रहते हैं।" अशोक बाजपेयी की कविता जीवन के विराट फलक को देखती है। इसमें प्रकृति है, अपने पूरे कौतुहल के साथ। दरअसल उनकी कविता हर आश्चर्य को कहने की कोशिश है। प्रकृति के पास वे जिज्ञासा लिए उपस्थित हैं। जानना चाहते हैं, उसके रहस्य को। रहस्य कहाँ नहीं है? वे रहस्यों के सामने उसे जानने के लिए खड़े हैं, इसी कोशिश में उनकी कविता जन्म लेती है। शब्द ही वह साधन है, जो निःशब्द की यात्रा में आपका सहारा है। वह आपको खो जाने से बचाए रखता है। बार–बार अशोक बाजपेयी अपनी कविता में शब्द की महिमा को गाते हैं। वे कहते हैं– "गहरे नाउम्मीद अंधेरे में', चीखों, विलापों और पुकारों के घमासान में उठता है एक लहुलुहान लेकिन हार न मानने वाला शब्द।"

शब्द अपराजेय है। वे अपनी भाषा, शब्द संपदा, भाषा व्यवहार, शब्द नियोजन को लेकर चिंतित हैं तभी तो कहते हैं– "भाषा में शब्द लगातार घट रहे हैं और गालियाँ तेजी से बढ़ रही हैं। अखबार निकल रहे हैं स्तुति स्मारिकाओं की तरह निर्लज्ज।"

अशोक बाजपेयी अपने शब्दों में प्रार्थनाएँ रचते हैं, ये रहस्य को जानने के लिए याचनाएं हैं। उनकी कविता में जहाँ मनुष्य केंद्र में है वहीं उसके चारों ओर विविध रूपों में ब्रह्मांड है। यहाँ जीवन एकाकी नहीं, उसका विस्तार है। प्रेम, प्रकृति, परिवार, संबंध, समाज और समाज विरोधी ताकतों की भी वे अपनी कविता में पड़ताल करते हैं। सत्रह कविता संग्रहों में उनका कवि कर्म हमारे सामने है पर अब भी उम्मीद है– "हो सके तो मैं अपने समय के लिए

उम्मीद की एक नई वर्णमाला लिखना चाहता हूँ।" जहाँ उन्होंने जीवन में संघर्ष की पक्षधरता दिखाई है वहीं सौंदर्य और आनंद को गाया भी है। वे अली अकबर खाँ, कुमार गंधर्व और जे. स्वामीनाथन पर कविता लिखते हैं। वे अपनी कविता में कला और संगीत की बातें करते हैं। इस प्रकार उनका काव्य फलक बहुत विस्तृत है। उनका लेखन कभी एकपक्षीय नहीं रहा। वे बहुवचन में बात करते हैं। उनकी कविता जीवन के विविध पक्षों की व्याख्या तो करती ही है साथ ही कला के विभिन्न क्षेत्रों में समान रूप से आवाजाही करती है। जिस समय एक खास फ्रेम की काव्यधारा का वर्चस्व हो, उस समय फ्रेम के बाहर लिखने वाले अशोक बाजपेयी का रूपवादी, कलावादी कहकर जबरदस्त विरोध किया गया। यह सोची–समझी रणनीति थी। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में सबसे पहले सोवियत रूस में स्टालिन ने रूपवादी कहकर, पार्टी लाइन से बाहर लिखने वाले लेखकों की निंदा की थी। यही शैली यहाँ भी अपनाई गई। स्टालिन ने तो रूपवादी कहकर महान संगीतकार स्त्रेविन्सकी की भी आलोचना की थी। बाद में कई नोबेल पुरस्कार प्राप्त साहित्यकारों और दुनिया के कई प्रसिद्ध कलाकारों ने उनके वक्तव्य की निंदा की, तब उन्होंने अपना वक्तव्य वापस ले लिया था।

हमारे यहाँ लीक से बाहर चलने वालों को इस तर्ज पर रूपवादी, कलावादी कहा गया। इस संकुचित विचार के कारण हमारे महान संगीतज्ञों, नृत्यकारों और चित्रकारों को उस खेमे में पर्याप्त स्वीकृति नहीं मिली। बाद में उन महान कलाकारों का विश्वव्यापी सम्मान देखते हुए उन्हें स्वीकार करना पड़ा। परंतु वे कलाकार अपनी परंपरा के साथ अडिग खड़े रहे। अशोक बाजपेयी ने इतना विपुल और इतना विविध लिखा कि काव्य जगत में तमाम विरोधों के बावजूद उनकी उपस्थिति अक्षुण्ण है।

काव्य आलोचना के क्षेत्र में अशोक बाजपेयी नए आयाम लेकर आए। आलोचना में उनकी दर्जन भर किताबें उन्हें एक बड़े आलोचक के रूप में स्थापित करती है। वह प्रगतिशील आलोचना के शिखर का समय था और डॉ. नामवर सिंह आलोचना के सिरमौर थे। उनकी स्थापनाओं से हटकर कुछ कहना एक मुश्किल काम था, ऐसे में अशोक बाजपेयी काव्य आलोचना में नई अवधारणाएँ लेकर आए। अशोक बाजपेयी नामवर सिंह को पसंद करते हैं, उन्हें बड़ा आलोचक मानते हैं परंतु वे उन्हें आलोचना की सीमा नहीं मानते। वे बार–बार कहते हैं कि जिंदगी उस फ्रेम पर समाप्त नहीं हो जाती जिसे प्रगतिशील आलोचना ने बना दिया है। जिंदगी उससे बाहर भी है और यदि साहित्य जिंदगी की व्याख्या है तो उसकी आलोचना किसी निर्धारित फ्रेम में कैसे सीमित हो सकती है?

एक ओर वे मुक्तिबोध पर बात करते हैं तो दूसरी ओर वे अज्ञेय के महत्व को भी निरूपित करते हैं। अशोक बाजपेयी अपनी आलोचना में सिर्फ यथार्थवाद का एजेंडा लेकर नहीं चलते, वे अपनी आलोचना में प्रेम, प्रकृति और परंपरा की व्याख्या करते हैं। उनकी काव्य आलोचना मनुष्य की चेतना के अंधेरे कोनों तक जाती है, जहाँ कवि शब्दातीत की ओर इशारा करने लगता है, उनका आलोचक मन उसे उपेक्षित नहीं करता वरन उसे समझने की कोशिश करता है। जीवन बहुत विस्तृत है, साहित्य में उसके विविध आयामों की व्याख्या की जाती है। सिर्फ सामाजिक यथार्थ की कसौटी पर हम जीवन के अन्य पक्षों की उपेक्षा नहीं कर सकते। अशोक बाजपेयी एक जगह कहते हैं – "आलोचना सिर्फ रचना का नहीं, उसके माध्यम से मनुष्य का ही साक्षात्कार है। और अगर रचना सामाजिक यथार्थ को अपना उपजीव्य बताती है तो उसकी प्रामाणिकता, विश्वसनीयता और वस्तुपरकता की जाँच किए बिना यह साक्षात्कार सार्थक बल्कि पूरा भी नहीं हो सकता। हमारी समूची संस्कृति के स्वास्थ्य के लिए यह अनिवार्य है कि आलोचना रचना में सामाजिक यथार्थ को लेकर व्याप्त सरलीकरणों, रूमानियत और राजनैतिक भोलेपन और नैतिक संवेदनहीनता के विरुद्ध लगातार संघर्ष करे ताकि साहित्य में व्यक्त अनुभव, आकलन और समझ को राजनीति, विज्ञान, पत्रकारिता, अर्थशास्त्र जैसे अनुशासनों के मुकाबले अवयस्क या अविश्वसनीय न माना जाए जैसा कि इन दिनों अक्सर माना जा रहा है।"

सन् 1970 में अशोक बाजपेयी की पहली आलोचना पुस्तक आई– 'फिलहाल'। प्रगतिशील आलोचना के वर्चस्व काल में यह पुस्तक नई बहस की शुरूआत करती है। सामाजिक यथार्थ, समकाल, प्रतिबद्धता, भोगा हुआ सच, तत्कालिक राजनीति और मानवीय संघर्ष जैसे विषयों पर अशोक बाजपेयी अपने ही अंदाज में बात करते हैं। वे मनुष्य के विकास क्रम को झूठलाते नहीं परंतु उसके विकास की अपार संभावनाओं पर संवाद करते चलते हैं। वे साहित्य में सिर्फ सामाजिक यथार्थ की वकालत नहीं करते, इस आधार पर हम साहित्य का सिर्फ एक पक्ष देख पाते हैं, जबकि साहित्य का संसार बहुत विस्तृत है। उनका आग्रह है कि साहित्य के अन्य अनुशासनों पर भी बात की जानी चाहिए। वे समकालीनता को भलीभांति समझते हैं परन्तु उसके घेरे में रहना पसंद नहीं करते इसलिए अपनी आलोचना में वे नया काव्य शास्त्र गढ़ते हैं। उनकी काव्यालोचना में जो ताजगी है और खुलापन है, वह पाठकों को आकर्षित करता है। उन्होंने अपने आलोचनात्मक लेखन द्वारा पूर्ववर्ती सीमाओं का अतिक्रमण किया है और नई स्थापनाओं के साथ वे आगे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं।

'फिलहाल' के पश्चात 'कुछ पूर्वाग्रह', 'कविता का गल्प', 'तीसरा साक्ष्य', 'कुछ खोजते हुए', 'पावभर जीरे में ब्रह्मभोज', 'सीढ़ियाँ शुरू हो गईं', 'कविता के तीन दरवाजे' आदि उनकी कई आलोचना की पुस्तकें हमें लगातार दिखाई देती हैं, जो उन्हें इस समय का बड़ा आलोचक सिद्ध करती हैं। अपनी अवधारणाओं के साथ वे सदा बातचीत के लिए उत्साहित रहते हैं। हालांकि विचारधारा वालों ने हमेशा उन पर कलावादी, रुपवादी और विचारहीन होने का आरोप लगाया है। दरअसल उनकी आलोचना और उनका व्यक्तित्व विचारधारा के फ्रेम को बार–बार तोड़ता है। वे हमेशा कहते हैं कि जिंदगी उस निर्धारित दायरे से बहुत बड़ी है और जिंदगी की व्याख्या करने वाला साहित्य भी बड़ा है। जीवन में विविध कलाओं और उनके प्रभाव को भला कैसे उपेक्षित किया जा सकता है? इसी प्रकार उन्हें विचार से नहीं विचार–प्रणाली से परहेज है। वे स्पष्ट कहते हैं कि आलोचना का काम प्रश्न उठाना है फतवे देना नहीं। जबकि उनके समानांतर कई आलोचक अपनी आलोचना में फतवे जारी करते हैं। बरअक्स अशोक बाजपेयी उनके सामने प्रश्नों की झड़ी लगा देते हैं और उन्हें बहस करने के लिए खुला निमंत्रण देते हुए दिखाई देते हैं। वे अपनी आलोचना में वैचारिक भिन्नता पर नहीं काव्य वैशिष्ट्य पर ध्यान केंद्रित करते हैं। अज्ञेय, शमशेर और मुक्तिबोध को वे नई कविता की वृहत्त्रयी मानते हैं। यहाँ शमशेर और मुक्तिबोध के साथ अज्ञेय की बात करना यह बताता है कि उनकी सोच कितनी व्यापक है। वे मार्क्सवादी आलोचना और साहित्य में वामपंथी राजनीति के वर्चस्व को अस्वीकार करते हैं। उनके राजनैतिक विश्वास गांधी के निकट हैं। वे मानते हैं कि साहित्य का अपना स्वराज है और अमूर्तन का अध्यात्म। वे स्पष्ट करते हैं कि साहित्य एक मशाल है तो उसे राजनीति के आगे होना चाहिए, तभी वह राजनीति को रास्ता दिखा सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अशोक बाजपेयी अपने किस्म के अनूठे कवि हैं और आलोचना के लिए नए आयाम लेकर ऐसे समय साहित्य जगत में पदार्पण करते हैं, जब विचारधारा, संगठन और एक खास तरह की

राजनीति का वर्चस्व था। कमोवेश आज भी है, तब अशोक बाजपेयी धारा के विरुद्ध अपने आप को स्थापित करते हैं और साहित्य में जिंदगी के विविध पक्षों की खुलकर वकालत करते हैं, जिसके लिए उन्हें तरह–तरह के विरोध झेलने पड़ते हैं परंतु वे जो सोचते हैं, वैसा ही लिखते हैं। वहाँ कोई विचार प्रणाली या राजनीति उनके मूल्य निर्धारित नहीं करती। वे साहित्य की स्वायत्ता के पक्षधर हैं और एक सार्थक के रूप में उसके उदाहरण भी।

कवि और आलोचक के अलावा अशोक बाजपेयी का एक रूप और है, कला समीक्षक का। अमूमन हिंदी में कवियों और लेखकों की कलाओं में रुचि बहुत कम देखने को मिलती है। ऐसे उदाहरण विरले हैं कि निराला संगीत में गहरी रूचि रखते हैं और महादेवी वर्मा चित्रकारी में इधर वृहद् हिंदी समाज में उंगलियों पर गिने जाने वाले लोग होंगे जो संगीत, नृत्य और चित्रकला में साधिकार दखल रखते हों। अशोक बाजपेयी उनमें से एक हैं। मेरी जानकारी में कलाओं पर जितना विस्तृत और गहन विश्लेषण अशोक बाजपेयी हिंदी में लेकर आए, उतना कोई और लेखक, कवि नहीं। हाँ, कला समीक्षक हमारे यहाँ कई हैं परंतु किसी ने कलाओं पर अपने लेखन को साहित्य जगत में इस तरह प्रतिष्ठित नहीं किया, जिस प्रकार अशोक बाजपेयी ने किया।

अशोक बाजपेयी की एक प्रसिद्ध किताब है 'समय से बाहर'। इसमें संगीत, नृत्य और चित्रकला पर उनके कई लेख संग्रहीत हैं। इस किताब को मैं इसीलिए महत्वपूर्ण कहता हूँ कि इसमें उन्होंने साहित्य और कलाओं के संसार को समय के परिप्रेक्ष्य में व्याख्यायित किया है। अपनी भूमिका में ही वे लिखते हैं –

"समय का आग्रह इधर पिछले लगभग सौ वर्षों से साहित्य में लगभग केंद्रीय होता गया है, अपने समय में संबंध या उसके प्रति वफादारी प्राचीनों के यहाँ विशेष महत्व नहीं रखता था हालांकि देश काल का विचार था। इन दिनों तो समय का आतंक समूचे साहित्य पर है, जो अपने समय को नहीं लिख रहा है। वह मूल्यांकन कुछ नहीं कर रहा, ऐसा पूर्वाग्रह प्रबल है। समय को समाज का लगभग समानार्थी भी माना जाता है। अगर आपके यहाँ समाज की कुछ पहचानी जा सकने वाली छवियां हैं तो आप समय के हिसाब से काम कर रहे होंगे। सारा समय सिर्फ सामाजिक समय है। यह बात और है कि अक्सर समाज की उपस्थिति समाज शब्द की ही उपस्थिति है– उस सत्ता या जटिल संरचना की नहीं जो कि समाज बुनियादी और अनिवार्य रूप से होता है। सूत्र कुछ यों बन गया है कि समय समाज है।

इस चालू धारणा के रहते कलाओं का औचित्य उसी हद तक है जब तक कि वे इस सामाजिक पूर्वाग्रह की पुष्टि या सत्यापन करें। कलाओं के सामाजिक आशय और स्रोत होते हैं इससे इंकार नहीं। पर वे उन्हीं तक मौजूद नहीं हैं और न ही वे उन्हीं से प्रेरित, रचे या समझे जा सकते हैं– साहित्य और कलाएँ ऐतिहासिक–सामाजिक समय के बरक्स अपना समय रचती हैं।

समय का अर्थ मात्र काल नहीं है वह रूढ़ि, प्रथा और परिपाटी भी है और सीमा या हद भी। कवि या साहित्य का आलोचक कलाओं से उलझे, ऐसी प्रथा हिंदी में नहीं है। अक्सर साहित्य ही उसकी हदबंदी है। यहाँ इस कवि–समय से, आलोचनात्मक रूढ़ि से बाहर जाने का उद्यम है। इसीलिए समय से बाहर है।"

आगे अशोक बाजपेयी कहते हैं कि हम कब उस खुले चौगान में मुक्त होकर सांस लेंगे जब भीमसेन जोशी के बगल में बतियाते बैठे होंगे शमशेर, स्वामीनाथन के चित्रों को निहार रहे होंगे नसीर अमीनुद्दीन खां डागर, अरुण कोलटकर की कविताएँ सुन रही होंगी गंगूबाई हंगल, हबीब तनवीर का नाटक देखते होंगे अकबर पदमसी और बिरजू महाराज– आस्वाद में डूबे, एक–दूसरे से बेखबर पर एक–दूसरे के प्रति बेहद सजग और चौकन्ने।

स्वयं अशोक बाजपेयी ने आगे बढ़कर ऐसा वातावरण बनाया है, जिसमें संगीतकार, नृत्यकार, चित्रकार और साहित्यकार एक साथ हैं और एक–दूसरे की सर्जना पर टिप्पणियां कर रहे हैं। उनकी कुमार गंधर्व, अमीर खां, सैयद हैदर रजा और जे. स्वामीनाथन से मित्रताएं जग जाहिर हैं। उन्होंने संगीत विषयक पहला निबंध: 'अली अकबर खां का सरोद वादन लिखा' इसके पश्चात कला केंद्रित लेखन में वे नए प्रयोग करते चले गए। कुमार गंधर्व और मल्लिकार्जुन मंसूर पर उन्होंने लंबी कविताएं लिखीं। संगीत, नृत्य और चित्रकला पर उनका विपुल लेखन है, जो साहित्य की धरोहर है।

इस प्रकार आजादी के बाद अशोक बाजपेयी ने पहली बार साहित्य को विचार प्रणाली से अलग करते हुए, उसे एक खास किस्म की राजनीतिक जकड़बंदी से मुक्त कर उसके स्वायत्त रूप को विभिन्न कलाओं के समकक्ष लाकर समग्र विवेचन प्रस्तुत किया। साहित्य में एवं समानांतर कलाओं में समकालीनता के प्रश्न को अशोक बाजपेयी अपने ढंग से विश्लेषित करते हैं। वे लिखते हैं –

"विभिन्न माध्यमों के बीच अंतर तो है ही। उनके प्रयोक्ताओं के बीच कुछ–न–कुछ दूरी भी रहती ही है। पर लगता है कि हमारे परिवेश में विभिन्न कलाओं के बीच संवाद और अंतर क्रिया बहुत ही कम है। संगीत और नृत्य की महफिलों में कभी–कभार लेखक और चित्रकार मिल जाएँगे पर कविता पाठ सुनने कोई संगीतकार आ जाए या कला प्रदर्शनी देखने कोई नर्तक, ऐसा बहुत कम होता है। अगर आ जाए तो किसी माध्यम के प्रति स्वाभाविक उत्सुकतावश नहीं, किसी व्यक्तिगत संबंध के कारण। एक कारण तो किसी हद तक यह है कि समकालीनता का सीधा दबाव जैसा साहित्य, रुपंकर कलाओं और रंगमंच पर है, संगीत और नृत्य पर नहीं। इसीलिए शायद समान सरोकारों की कोई बिरादरी नहीं बनती। हमारे यहाँ शायद ही कोई आंदोलन ऐसा हुआ है जो कि एक से अधिक कलाओं में एक साथ व्याप्त हुआ हो जबकि यूरोप में मसलन प्रभाववाद रुपंकर कला, साहित्य, संगीत आदि का संयुक्त आंदोलन था। यह कहना सही नहीं होगा कि शास्त्रीय संगीत या नृत्य की जड़ शास्त्रीयता आड़े आती होगी। अव्वल तो यह शास्त्रीयता जड़ नहीं बहुत जीवंत और गतिशील है।"

इधर साहित्य, रंगमंच और सिनेमा पर पर्याप्त आलोचनात्मक लेखन हुआ। विश्लेषण की नई पद्धतियाँ सामने आयीं। दुर्भाग्य से शास्त्रीय कलाओं में आलोचनात्मक लेखन बहुत कम हुआ। हाँ, अंग्रेजी में इस तरह का काम देखने में आया है। हमारे कई शास्त्रीय कलाकारों पर अंग्रेजी में महत्वपूर्ण पुस्तकें उपलब्ध हैं। हिंदी में बहुत कम, परंतु शास्त्रीय कलाओं एक तरह की जो स्थानीयता है, लोक परंपरा है, आध्यात्मिक रुझान है, वह भारतीय भाषाओं यथा बंगला, मराठी आदि की समीक्षाओं में तो उभरकर आता है लेकिन अंग्रेजी समीक्षा में यह छूट–छूट जाता है। हिंदी में जो समीक्षा लेख देखने को मिले, उनमें विश्लेषण कम, विवरण ज्यादा दिखाई देता है। शायद पहली बार हिंदी में शास्त्रीय कलाओं पर गंभीर आलोचनात्मक लेखन हमें अशोक बाजपेयी के यहाँ दिखाई देता है।

शास्त्रीय कलाओं की आलोचना में अशोक बाजपेयी सबसे पहले इन कलाओं की स्वायत्तता की बात करते हैं। इसके पहले शास्त्रीय कलाओं को सिर्फ राष्ट्रीय पहचान के रूप में देखा जाता था। उनमें शास्त्र परंपरा के

निर्वाह की बात प्रमुख थी और इन कलाओं में व्यक्त ऐंद्रियता को धार्मिक व्याख्याओं से समझाया जाता था। अशोक बाजपेयी अपने विवरणों में इन कलाओं से सीधे साक्षात्कार करते हैं और उनमें गतिशील परंपरा के साथ नित नूतनता की तलाश करते हैं। वे इन कलाओं की स्वतंत्र पहचान के साथ इनमें नवाचार की बातें करते हैं। इस प्रकार अशोक बाजपेयी अपनी कला आलोचना से हमें शास्त्रीय कलाओं की गतिशील और जीवंत परंपरा के पास लेकर जाते हैं। खासकर हिंदी में ऐसा विश्लेषणात्मक कला लेखन हमें अन्यत्र दिखाई नहीं देता। उन्होंने दिग्गज कलाकारों पर संस्मरण लिखे, कविताएँ लिखीं और उनकी कला वैशिष्ट्य पर लंबे समीक्षात्मक निबंध लिखें।

एक जगह अशोक बाजपेयी लिखते हैं –

"साहित्यकारों में संवेदना का जितना विस्तार होता है, अन्य शिल्पियों में नहीं होता– साहित्यकार ही हैं जो दूसरे शिल्पों के भी सदस्य होते हैं। पर साहित्यकार भी संगीत पर लिखने से कतराते ही हैं। लिखने का अधिकार सहृदय को ही होता है और उसका संबंध जितना रस से है उतना शास्त्र से नहीं।"

अशोक बाजपेयी सालों साल 'जनसत्ता' में अपना कॉलम 'कभी–कभार' लिखते रहे। अब यह लेखन पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित है। इस कॉलम में उन्होंने साहित्य, संगीत, नृत्य, चित्रकला, रंगमंच, पुस्तकें और देश भर में होने वाले कला उत्सवों पर गंभीर लेखन किया है। विश्व साहित्य एवं कला क्षेत्रों की हलचलों पर उनकी गहरी नजर है। समय–समय पर उन्होंने इन पर सारगर्भित टिप्पणियाँ अपने कॉलम में की हैं, जो साहित्य जगत की धरोहर है।

अशोक बाजपेयी के व्यक्तित्व का एक सबल पक्ष और है। म.प्र. शासन में उनका सांस्कृतिक सचिव होना। अफसर तो शासन में बहुत होते हैं और वे अपनी भूमिका निभाकर विदा हो जाते हैं परंतु अशोक बाजपेयी शासन में बड़े अफसर होकर अपनी शर्तों पर कला और संस्कृति के लिए काम करते रहे। भारत भवन की स्थापना और फिर पूरे देश में भोपाल को सांस्कृतिक राजधानी के रूप में पहचान दिलाना, अशोक बाजपेयी के ही बस की बात थी। प्रशासन में रहकर अशोक बाजपेयी ने साहित्यकारों, संगीतज्ञों, रंगकर्मियों और कला सेवियों को राजनेताओं से ज्यादा महत्व और सम्मान प्रदान किया, जिसके कि वे सदा से हकदार रहे। उनके कार्यकाल में भोपाल में निराला सृजन पीठ, सागर में मुक्तिबोध सृजन पीठ और उज्जैन में प्रेमचंद सृजन पीठ की स्थापना हुई, जिससे उस समय के महत्वपूर्ण साहित्यकारों को आदरपूर्वक आमंत्रित किया गया, जहाँ रहते हुए उन्होंने कई उल्लेखनीय कृतियों का सृजन किया। खजुराहो नृत्य समारोह, तानसेन संगीत समारोह, अमिर खां उत्सव, कालिदास समारोह जैसे महत्वपूर्ण आयोजनों के कारण म.प्र. की पूरे देश में पहचान स्थापित हुई। साहित्य परिषद द्वारा समय–समय पर महत्वपूर्ण साहित्य के कार्यक्रम आयोजित हुए, जिनमें देश भर से मूर्धन्य साहित्यकार बुलाए गए। इन आयोजनों में सम्मिलित होने वाले साहित्यकारों और कलाकारों के सम्मान का पूरा ख्याल रखा गया, उन्हें उचित पारिश्रमिक प्रदान करने से लेकर उनकी सुविधाओं का समुचित प्रबंध अशोक बाजपेयी की निगरानी में हमेशा उच्च स्तरीय रहा।

अशोक बाजपेयी की बढ़ती हुई लोकप्रियता और उनकी कार्यप्रणाली को देखते हुए उन पर हमले भी हुए। भारत भवन के बहिष्कार की बातें सामने आईं परंतु उनके द्वारा स्थापित मानदंडों को कोई चुनौती नहीं दे सका। वे स्वयं सर्जक तो हैं ही उनके दर्जनों काव्य संग्रह और दर्जनों आलोचना ग्रंथ, इस बात के प्रमाण हैं। सबसे बड़ी बात है कि वे कहीं भी हो रही सर्जना के प्रबल पक्षधर हैं, उनकी यह पक्षधरता हर गुट, खेमे, राजनीति और निजी स्वार्थ से बहुत ऊपर है। उन दिनों 'तार सप्तक' में आ जाना किसी को स्थापित हो जाने के लिए पर्याप्त था। अशोक बाजपेयी ने इसी तर्ज पर 'पहचान सीरिज' का प्रकाशन किया, जिसमें छप जाना, तार सप्तक की तरह ही महत्वपूर्ण माना गया। इसके अंतर्गत आज के कई मूर्धन्य कवियों के पहले काव्य संग्रह प्रकाशित हुए।

अशोक बाजपेयी ने कई प्रसिद्ध पत्रिकाओं का संपादन किया, जिनमें पूर्वाग्रह, बहुवचन, समास, अरुप एवं स्वरमुद्रा आदि प्रमुख हैं। सुदूर गाँव और कस्बों में बैठे हुए किसी लेखक–कवि की कोई रचना उन्होंने कहीं पढ़ी और उन्हें वह अच्छी लगी तो उन्होंने झट लेखक–कवि से संपर्क किया और उसकी रचनाओं को अपनी पत्रिकाओं में स्थान दिया। वे संगीत, नृत्य, रंगमंच और चित्रकला के क्षेत्र में भी कहाँ क्या हो रहा है, इससे प्रयासपूर्वक भलीभांति परिचित होते रहे और सार्थक सृजन को उन्होंने बिना किसी गुटबंदी के भरपूर सम्मान दिया।

मैंने उनकी लिखी हुई अधिकांश किताबें पूरे मनोयोग से पढ़ी हैं। उनके काव्य संग्रह और आलोचना की पुस्तकें बहुपठित हैं। इधर मैं उनकी दो किताबों का विशेष उल्लेख करना चाहूँगा। उनकी एक संस्मरण की पुस्तक है – 'अगले वक्तों के ये लोग' और दूसरी पुस्तक है – 'अपने–दूसरे' (पत्र संकलन), अशोक बाजपेयी को जानने–समझने के लिए मैं ये दो पुस्तकें पढ़ा जाना जरूरी समझता हूँ। पहली पुस्तक में अशोक बाजपेयी अपने समकालीन साहित्यकारों, संगीतज्ञों, रंगकर्मियों और अन्य सहयोगियों के विषय में क्या सोचते हैं, यह विस्तार से वर्णित है। अज्ञेय, शमशेर, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, नेमीचंद्र जैन, इंतजार हुसैन, हरिशंकर परसाई, कृष्णा सोबती, कृष्ण बलदेव वैद, बदरी विशाल पित्ती, श्रीकांत वर्मा, निर्मल वर्मा, कुमार गंधर्व, मल्लिकार्जुन मंसूर, जगदीश स्वामीनाथन, सैयद हैदर रजा और ब.ब. कारंत जैसे आत्मीय जनों को अशोक बाजपेयी ने खूब याद किया है। निश्चित है अशोक बाजपेयी से इनके अंतरंग संबंध रहे हैं। इन प्रतिभाओं के व्यक्तित्व और कृतित्व को भिन्नता के दायरे में अशोक बाजपेयी किस तरह देखते हैं, इसका विस्तृत ब्यौरा इस किताब में मिलता है। इस किताब को पढ़ना अशोक बाजपेयी के अंतर्जगत में साहित्य, कला और संगीत के उद्वेगों को जानना–समझना है। वे अपने समय में कला जगत के दिग्गजों के मनोमय संसार और उनकी कला के सूक्ष्म आवेगों को किस तरह आत्मसात करते हैं, इसका विस्तृत विवरण पढ़ते हुए अशोक बाजपेयी के अंतरंग पक्ष को जाना जा सकता है।

दूसरी किताब 'अपने–दूसरे' से कला और साहित्य जगत के मूर्धन्य अशोक बाजपेयी के विषय में क्या सोचते हैं, उनसे उनके कितने आत्मीय, अंतरंग संबंध–संपर्क रहे हैं, इससे भलीभांति परिचित हुआ जा सकता है। 200 पत्रों के इस संकलन में अशोक बाजपेयी के व्यक्तित्व के कई आयाम खुलते हैं।

यह बात तो तय है कि अपने समय में साहित्य और कला समीक्षक के रूप में अशोक बाजपेयी एक बड़ी उपस्थिति हैं। उनसे असहमत हुआ जा सकता है और बहुत लोग हैं भी। परंतु उनकी उपस्थिति को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। मैं जिस तरह उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को देखता हूँ, उसमें मुझे वे बड़े सर्जक और सर्जना के प्रबल पक्षधर दिखाई देते हैं।

अंत में उनकी ही एक कविता याद करते हुए– 'प्रार्थना एक वृक्ष है, जिसकी हर पत्ती गुनगुनाती है पर अपने लिए कुछ नहीं माँगती।

आलेख

आह! कब आओगे अतिथि

डॉ. प्रदीप उपाध्याय
16, अम्बिका भवन, उपाध्याय नगर,
मेंढकी रोड, देवास, म.प्र.
मो.– 9425030009

अतिथि! आखिर तुम क्यूं बुरा मान बैठे हो। तुम तो आओ। अब तुम्हारे आने पर हम कभी नाक–भौंह नहीं सिकोड़ेंगे और न ही दूसरा कोई गिला–शिकवा करेंगे। एक बार आओ तो सही। तुम्हें वही प्रेम, स्नेह, अपनत्व का भाव मिलेगा। भावुक लम्हे मिलेंगे। संवेदनशीलता की पराकाष्ठा मिलेगी। मैं जानता हूँ कि तुम्हें नाती–पोते तो ठीक, बच्चे भी नहीं पहचान पाएँगे क्योंकि एक अरसा हो गया है हमें– तुम्हें आए–गए। और हाँ बच्चे भी कहाँ यहाँ बैठे हैं पहचानने के लिए। वे भी तो अतिथि बनकर ही कभी–कभार आकर घर पर दस्तक देते हैं। उन्हें कभी कहना ही नहीं पड़ता कि अतिथि तुम कब आओगे बल्कि वे स्वयं ही आने से पहले जाने का कार्यक्रम घोषित कर आते हैं। भला अब किससे किसकी शिकायत करें। वैसे मुझे तो अपनी भूलों का अहसास हो गया है। शायद तुम भी ऐसा ही कुछ सोचते होगे। मैं भरोसा दिलाता हूँ कि अब तुम्हारी पीठ पीछे कभी यह नहीं कहूँगा कि अतिथि तुम कब जाओगे।

वैसे तुम्हारी स्थिति भी हमारे जैसी हो गई है। मैं जानता हूँ कि तुम भी अकेले होकर रह गए हो। तुम भी पिंजरे में कैद बुलबुल की तरह अपने खुले संसार में अपनों के बीच आने को फड़फड़ाते होगे। कोई दो बात करने तुम्हारे पास भी नहीं आता होगा। जानता हूँ कि पति–पत्नी मिलकर भी कितनी बात करेंगे। इसमें हमारी–तुम्हारी किसी की गलती नहीं है। समय ही इतनी तेजी से दौड़ लगाकर आगे निकलता गया कि हमें सोचने–समझने का अवसर ही नहीं मिला या फिर यूँ कहें कि नासमझी में हम केवल अपने लिए ही जीते रहे और बाकी सबको पीछे छोड़ते चले गए। बहरहाल, हम अपनी नादानियों पर मिलकर बात करेंगे। तीज–त्योहार वाली हँसी–ठिठोली भी करेंगे। खुलकर जीने का जज्बा फिर से खोजने का प्रयास करेंगे।

मन कहता है कि तुम होली–दिवाली की मिठाई खाने, दशहरा मिलने जरूर आओगे। हरेक तीज–त्योहार पर हम मिलने–जुलने की परम्परा फिर कायम करेंगे। लेकिन तत्क्षण दिमाग कहता है कि शायद तुमने भी गौरैया की तरह मोहक संसार से मोह त्याग दिया है और क्रंकीट के जंगल में आभासी होकर अपने सोशल मीडिया के संसार में ही रच–बस गए हो जहाँ सुबह शाम की 'गुड मॉर्निंग' और 'गुड नाइट' की फेरी लगाकर आभासी खुशी हासिल कर संतुष्ट हो गए हो। क्या तुम्हें सोशल मीडिया पर आभासी संदेशों से कभी संतुष्टि का बोध हुआ है। फिर भी अतिथि तुम्हें बताना चाहता हूँ कि उस आभासी संसार के संदेशों में वह अपनापन, स्नेह, करुणा नहीं है जो उस दौर के खतों में हुआ करती थी जिन्हें सहेजने, बार–बार पढ़ने और नयनों की कोर भीगोने की इच्छा सदैव बनी रहती थी।

तुम भी शायद मेरी बात से सहमत होगे कि वर्तमान दौर का हमारा अकेलापन सालता है। अकेला घर काट खाने को दौड़ता है। ठीक है भागमभाग का दौर है। किसी के पास समय नहीं है। काम न भी हो तब भी सब अस्त–व्यस्त हैं। इसलिए हे अतिथि, यह तो नहीं कहूँगा कि महीने–पन्द्रह दिन के लिए आ जाओ किन्तु दो–चार दिन का ही समय निकालकर आ जाओ ताकि हम मिल–जुलकर बहुत सारी बातें कर सकें, एक–दूसरे के दुख–दर्द बाँट सकें। तुम आओगे तो खीरपुड़ी, मालपुए, लड्डू–बाफले और भी अन्यानेक दूसरे पकवान भी बन जाएँगे वरना तो अभी यह हाल है कि सुबह का बना हुआ खाना शाम को भी दूरदर्शन पर चलने वाले बुनियाद, हम लोग जैसे सीरियल की तरह रिपीट टेलीकास्ट होता रहता है। बिना उत्साह के तो टाइम पास इसी तरह कर ही रहे हैं। पहले कितना आनंद आता था जब चचेरे–ममेरे रिश्तों के साथ बिना पूर्व सूचना सब एकत्र होते और बिना शिकन अतिथि से रिश्तों को निभाने की परम्परा थी। अब तो चचेरे–ममेरे रिश्तों को भावी पीढ़ियाँ इतिहास के संदर्भ ग्रंथों में ही खोजती मिलेगी। जब से यह हम दो–हमारे दो की पारिवारिक जुगलबंदी चली, तब से चचेरे–ममेरे रिश्तों की नसबंदी–सी हो गयी है। बहरहाल, रिश्तों को संजोने ही सही, अतिथि तुम आ ही जाओ।

भाई, अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है। आभासी दुनिया के संदेश तो मिट जाते हैं संचार माध्यमों से और दिल–दिमाग से भी किन्तु अपने संसार की बात ही निराली है। इसमें जुड़े–लिखे संदेश अमिट होकर दिल–दिमाग में रच–बस जाते हैं। इसीलिए कह रहा हूँ अतिथि तुम सारी झिझक छोड़कर आ जाओ। आह अतिथि, तुम कब आओगे। वैसी ही जिस तरह पहले भी आते रहे हो बिना झिझक, बिना औपचारिकता के अपने बनकर।

कविता

गोपाल दास नीरज

मैं तूफानों में चलने का आदी हूँ...
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो
हैं फूल रोकते, कांटे मुझे चलाते...
मरुस्थल, पहाड़ चलने की चाह बढ़ाते
सच कहता हूँ जब मुश्किलें ना होती हैं...
मेरे पग तब चलने में भी शर्माते
मेरे संग चलने लगे हवायें जिससे...
तुम पथ के कण–कण को तूफान करो...
मैं तूफानों में चलने का आदी हूँ...
तुम मत मेरी मंजिल आसान करो।

क्षणिकाएं

डॉ. नरेन्द्र नाथ लाहा
ललितपुर कॉलोनी, लश्कर, ग्वालियर(म.प्र)
9826611169

1
प्राण जाए
पर मोबाइल न जाए
मोबाइल मिल जाए
तो तसल्ली आ पाए

2
गति नहीं मति चाहिए
नियमों के तहत
ही
वाहन चलाइए

3
बच्चों जैसा
सरल मन बनाओ
आडंबर को
जीवन से हटाओ

4
झुक
अवश्य जाएं
पर
सम्मान न गंवाएं

5
अपने आप को
समझ पाओगे
गलतियां
सुधारते जाओगे

6
युवा की ऊर्जा
वृद्ध का अनुभव
दोनों मिला दो
कुछ भी करा लो

आलेख

कविता और काम का कोई गुरु नहीं होता

गिरेन्द्र सिंह भदौरिया "प्राण"
वृत्तायन, 917, स्कीम नं. 51,
इन्दौर–6, म.प्र.,
मो.– 9424044284

काव्य–प्रणयन की सामर्थ्य उत्पन्न करने वाले साधनों को 'काव्य हेतु' या काव्य का कारण कहा जाता है।ये साधन ही कवि को काव्य–प्रणयन में सक्षम बनाते हैं। आचार्य मम्मट के अनुसार काव्य या कविता के लिए प्रतिभा, निपुणता और अभ्यास ये तीनों ही हेतु या कारण बताए गए हैं।ये तीनों एक साथ मौजूद होने पर ही काव्य का निर्माण होता है।कवि की प्रतिभा या शक्ति के अभाव में काव्य का प्रसार या अवतरण संभव नहीं है।

चूँकि कविता काव्य का ही भेद है इसलिए ये हेतु कविता प्रणयन के लिए भी आवश्यक हैं, किन्तु कविता अपने आप में एक अवतरण भी है। इसका अवतरण होना ही इसे विशेष बनाता है।विशेष होने से इसके हेतुओं में कुछ और भी है जिनकी चर्चा आवश्यक है।ऐसा स्वतः सभी को आभासित भी होता है।अतः यहाँ इसके हेतुओं पर चर्चा व कविता और काम के प्रणयन पर विचार करना इस आलेख का अभीष्ट है।

रचना के अवतरण की एक प्रक्रिया होती है।यह एक स्वाभाविक घटना होती है, जिसे अच्छे–अच्छे कवि भी नहीं जान पाते और घटना घट जाती है अर्थात रचना हो जाती है।रचना के अवतरण के उपरान्त कवि को जिस आनन्द की अनुभूति होती है, वह अनिर्वचनीय व वर्णनातीत होती है। अवतरण की यह प्रक्रिया जानबूझ कर न होकर कवि के मानस में अनायास और स्वाभाविक रूप से चलती रहती है।समाधिस्थ कवि की उपज होने से इसकी उत्पत्ति पर किसी तर्क की कहीं गुंजाइश ही नहीं होती, साथ ही अवतरण की इस पूरी प्रक्रिया में गुरु की कहीं भी आवश्यकता महसूस ही नहीं होती।

आइए पहले भाव और विचार में मोटा अन्तर समझते हुए विषय को गति देते हैं।भाव तो सभी के हृदय में जन्म लेते हैं लेकिन आलम्बन के सहारे जब कवि के अन्तःकरण में बीज रूप भाव जन्म लेते हैं, तब कवि शनैः शनैः समाधि अवस्था में पहुँच जाता है और वह कल्पना लोक में भ्रमण करता है। जहाँ भावानुकूल होने पर वह परकाया प्रवेश भी कर सकता है।कवि मन की यही अवचेतन अवस्था भी होती है।

कल्पना लोक तो कल्पना लोक है, जहाँ शब्द शक्तियों व काव्य के बाह्य और आन्तरिक तत्त्वों के सहयोग से अकल्पनीय कविता का सृजन पल्लवित होकर अवतीर्ण होता है। यह अवतरण अत्यन्त क्लिष्ट होते हुए भी अति सहज व अनायास होता है।अतः कविता की रचना प्रक्रिया में समाधि और कल्पना को भी मैं कविता के हेतु मानता हूँ। इस तरह प्रतिभा, निपुणता, अभ्यास, समाधि और कल्पना को मिला कर कविता के कुल पाँच हेतु (कारण/साधन) बनते हैं।

ऊपर कह चुका हूँ कि अवतरित होने से कविता तर्क से परे हो जाती है।यों तो प्रकृति में कमल खिलता है और मनुष्य हँसता है लेकिन तर्क से परे होने के कारण कवि का कमल पुष्प प्रकृति के विपरीत हँस भी सकता है और मनुष्य खिलखिला सकता है।इस पर कोई आपत्ति नहीं लेता क्योंकि जब इसकी व्याख्या की जाती है तब स्पष्ट किया जाता है कि कवि का आशय कमल के खिलने और मनुष्य के हँसने से ही है।वहीं विचार मस्तिष्क में सतत् चलने वाली प्रक्रिया की उपज होते हैं।मस्तिष्क का विषय होने से हर विचार तर्क की कसौटी पर तुला हुआ होता है।मस्तिष्क में हर विचार को तर्क शक्तियों के माध्यम से होकर गुजरना पड़ता है।

दूसरी बात यह है कि विचार में प्रायः अभिधा शब्द शक्ति प्रधान होती है।यद्यपि यह जरूरी शर्त नहीं है।अन्य शब्द शक्तियाँ भी अपना कार्य करती हैं लेकिन विचार में कुछ भी लपेटने से दूसरी शब्द शक्तियों का बोलबाला होने का खतरा रहता है, जिससे विचार का आशय बदल भी सकता है।अतः इसकी तार्किक स्थिरता में परिवर्तन की कोई गुंजाइश कम ही होती है।विचार को तर्कानुशासन की कसौटी पर कसे जाने के कारण कमल पुष्प हँस नहीं पाता, उसे खिलना ही पड़ेगा।मनुष्य खिलखिला नहीं सकता उसे हँसना ही पड़ेगा। तर्क से विचारों की पुष्टि होने के कारण कोई विचारजन्य भी हो सकता है जहाँ आनन्द की प्राप्ति न हो।इसमें ज्ञान की विशेष आवश्यकता होती है।

अपवाद स्वरूप गद्य में कुछ आलेख कहानी आदि ऐसे आ सकते हैं, जिनमें भावों की प्रधानता हो सकती है, जैसे मुंशी प्रेमचन्द की कहानियाँ, ललित निबन्ध आदि, वहीं कविताएँ भी ऐसी हो सकतीं जिनमें भावों की शून्यता हो और विचारों की प्रधानता हो जैसे आयुर्वेद में लिखे गए श्लोक आदि।इनमें औषधि और रोगों से संबंधित कथ्य रहेगा।इनमें भावों से भरी कल्पना को स्थापित नहीं किया जा सकता, अतः कविता के दर्शन ही नहीं होते।इतना सब कुछ होते हुए भी अनुभव के आधार पर विचार और भाव का अन्तर समझ में आ जाता है।

इसे अन्य उदाहरण से भी समझते हैं जैसे उन्हत्तर सत्तर इकहत्तर बहत्तर तिहत्तर चुहत्तर पचत्तर छियत्तर सतत्तर अठत्तर इसमें लय भी है लुक भी है तान भी है क्रम भी है सार्थकता भी है। लेकिन यह भाव भरी कविता नहीं है।वहीं दूसरा उदाहरण देता हूँ, हिन्दी में तिरेसठ तेतीस और छत्तीस के अंकों को ऐसे ६३, ३३, ३६ लिखा जाता है।किसी अज्ञात कवि का एक दोहा है जिसमें एक सखी दूसरी सखी को बता रही है कि हे सखी! रात को मैं अपने पति से नाराज हो गई।अब आगे ६३, ३३, ३६ के अंकों की बनावट (आकृति) देखकर अर्थ आप स्वयं लगाइए –

"बात बात में रात सखि, गई पिया सों रीस
त्रेसठ से तेतिस भई, तेतिस से छत्तीस॥"

इस दोहे में वे ही अंक अर्थ के ऐसे विस्फोटक बन गए हैं जैसे ध्वनि काव्य में स्फोट होता है।

निश्चय ही काव्य कर्म बहुत कठिन साधना है, किन्तु आश्चर्य ही है कि कवि मन में इस जटिल कविता का सहज ही अवतरण होता है।यह कवि को मिला ईश्वरीय वरदान है।इस वरदान के बल पर एक समर्थ कवि गहरी अथवा उथली बात भी आसानी से कह लेता है।जिस कठिन बात को बड़े–बड़े विद्वान नहीं कह पाते हैं उसे एक छोटी–सी रचना के द्वारा कह सकता है।इतना ही नहीं उसे कालजई बना देता है और एक दीर्घ अन्तराल के बाद कवि स्वयं की रचना पर भी विस्मित होते हुए आश्चर्य व्यक्त कर सोचने लगता है कि यह मैंने कैसे और कब लिख दिया?

शाब्दिक और व्याकरण की दृष्टि से देखें तो संस्कृत के तीन शब्द ऐसे हैं जो काम और कविता के लिए प्रयुक्त होते हैं।प्रणय, प्रणयन और प्रणीत तीनों में पहला और दूसरा शब्द काम के प्रबोधन के लिए व दूसरा और तीसरा शब्द काव्य रचना के लिए प्रयुक्त होता है।प्रणय में प्र उपसर्ग है नी धातु है अच् प्रत्यय है, वहीं प्रणयन में प्र उपसर्ग है नी धातु है ल्युट् प्रत्यय है तो प्रणीत में प्र उपसर्ग है

नी धातु है क्त प्रत्यय है। इन शब्दों में कविता और काम दोनों के लिए प्रयुक्त यहाँ एक ही धातु है 'नी'। नी धातु के कई अर्थों में एक अर्थ लाना भी है। लाने का अभिप्राय रचना लाने से भी है और परिणय बन्धन से भी। दोनों में ही नव सृजन को लाया जाता है।

अवतरण है तो यह कवि के लिए नैसर्गिक है। नैसर्गिक क्रियाओं के लिए गुरु की आवश्यकता नहीं होती। जैसे शरीर से पसीना निकलना एक नैसर्गिक क्रिया है इसमें गुरु की आवश्यकता नहीं होती, वह स्वतः निकलता है। काम भी नैसर्गिक है, वह भी स्वतः उद्भूत होता है। इसे भी सिखाया नहीं जाता। अल्प बुद्ध पशुओं की वृत्तियों से इसे और भी आसानी से समझा जा सकता है। दोनों ही स्वाभाविक प्रक्रियाएँ हैं, इसलिए प्रणय और प्रणयन में गुरु की आवश्यकता नहीं है। अतः स्पष्ट है कि कविता और काम का कोई गुरु नहीं हो सकता।

अब आपके मन में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि कविता का कोई गुरु नहीं होता है तो कवियों में गुरु परम्परा तो बहुत प्राचीन है फिर गुरु किसलिए? इसका उत्तर यह है कि अवतरण का कोई गुरु नहीं होता लेकिन जिस प्रकार प्रसूता की कोख से बालक के जन्म लेने पर डाक्टर की निगरानी में नर्सें या घर पर दाई आदि के द्वारा नव प्रसूत बालक के शरीर का शोधन किया जाता है, उसे स्वस्थ और जीवित रखने के लिए उपाय बताए जाते हैं।

ठीक वैसे ही कवि की हृदय पेटी से कविता का अवतरण तो होता है लेकिन अवतरित होने पर उसका भी श्रृंगार किया जाता है। छन्द आदि अनुशासन की दृष्टि से अवतरण में भी कई दोष हो सकते हैं जो भावगत अथवा शिल्पगत हो सकते हैं, जिनका शोधन किया जाना आवश्यक होता है। जिन्हें कवि अपनी क्षमता से दूर करता तो है किन्तु अज्ञानतावश उन्हें समग्रता से दूर नहीं कर पाता है। ऐसे में आवश्यकता होती है एक सफल मार्गदर्शक अथवा गुरु की, जो हर दोष का हरण कर उसे परिमार्जित और संशोधित करा दे।

बाद में कवि को भी उसे सँवारने के लिए कला सीखनी पड़ती है। स्वयं को कविता का समीक्षक होना पड़ता है। यह कला सतत् अभ्यास और दीर्घ अनुभव से आती है किन्तु उसमें सन्देह भी रहता ही है। इसलिए कवि के लिए काव्य शिल्प में पारंगत गुरुओं की आवश्यकता होती है। कारण छन्द साधना का अत्यन्त जटिल होना भी है। कलागत शिल्प के सौन्दर्य की आभा को निखारने की विद्या मात्र एक गुरु ही दे सकता है क्योंकि कविताओं में उसके बाह्य और आन्तरिक तत्वों व छन्दानुशासन को बचाए रखना रंग और रूप से कविता के अवतरण को बचाए रखना होता है।

ईश्वर ने संसार को लयबद्ध किया है। कवि काव्य के द्वारा समाज को लयबद्ध करता है। वह हास्य और उपहास का माद्दा रखता है तो श्रृंगार से लेकर वीभत्स तक के कथ्य में भी सभी को आनन्द देता है। अपनी कल्याणकारी और सन्देशपरक रचनाओं से मानवता में नैतिकता का संचरण करता है, वहीं उसे सकल दृष्टि के स्वास्थ्य की चिन्ता करनी होती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि कविता के शिल्प के स्वास्थ्य के लिए गुरु आवश्यक भी हैं।

दोहे

प्रो.(डॉ) शरद नारायण खरे
प्राचार्य, शासकीय जेएमसी महिला महाविद्यालय,
मंडला, म.प्र.– 481661,
मोबाइल– 9425484382

रहें आचरण निष्कलुष, तो आता मधुमास
अपनाकर पावन चलन, मानव बनता खास
होना अच्छा आचरण, है विशिष्टता–रूप
जिससे खिलती चाँदनी, बिखरे उजली धूप
जिनका सँवरा आचरण, वे देते उजियार
द्वेष, कपट सब दूर हों, होती तब जयकार
अंतर्मन में नम्रता, अधरों पर मृदु बोल
बिना दोष का आचरण, होता है अनमोल
रीति, नीति हमसे कहें, सदा आचरण नेक
बन अच्छे इंसान तुम, कर सद् से अभिषेक
करके चोखा आचरण, पाओ नव पहचान
सारे दुर्गुण दूर हों, फलीभूत उत्थान
रोज आचरण हो सरल, मृदुता से भरपूर
खोट भरा जो आचरण, वह खो देता नूर
दोष बिना जब आचरण, तब बनती है बात
जब हो ऐसा आचरण, तो होता सौगात

ग़ज़लें

अभिनव अरुण
बनारस (उ.प्र.)
9415678748

मैं भी इंसा हूँ दीन रखता हूँ
उस .ख़ुदा पर यक़ीन रखता हूँ
ख़्वाब महलों के देखता ही नहीं
पांव नीचे ज़मीन रखता हूँ
मुफ़्त की दावतें नहीं खाता
घर में मोटा महीन रखता हूँ
दिल दुखाता नहीं कभी माँ का
.ख़ुद को मैं यूँ ज़हीन रखता हूँ
तुम ही बोलो यक़ीन किस पे करूँ
दोस्तों में मैं चीन रखता हूँ
बींध दें मुझको नींद आते ही
ऐसे दुश्मन दो तीन रखता हूँ
आस्तीनों से अब निकल जाओ
ताक़ पर लो मैं बीन रखता हूँ

कविता

डॉ. संजय चौहान
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
सरुप रानी राजकीय महिला महाविद्यालय,
अमृतसर, पंजाब, मो.– 9478440472

आया बसंत

भरा चतुर्दिक दिशा में धूलि
खिल उठा चमन में विविध फूल
पूर्व शिशिर का हो गया अंत
हंसता मदमाता आया वसंत
सुमनों की छवि सुन्दर प्यारी
मनमोहक, मनभावन न्यारी–न्यारी
मधुप–वृंद चले मृदु गान किये
उड़ते इठलाते निज आन किये
पिक–पंचम स्वर का होता न अंत
हँसता मदमाता आया बसंत
छाया वन में विपुल नव उल्लास
मृत लताओं में जगी नूतन आस
सुखों में होता नवल रसाभास
खग–कुल कलरव का आभास
बसंत बना अब सबका कंत
हँसता मदमाता आया बसंत
सौरभ समीर का मंद वेग
पल–पल उठता नूतन आवेग
बसुधा का रंगमयी हुआ वसन
खिल–खिल गया संपूर्ण चमन
नित्य शुभ्र कामना करते सुरकंत
हँसता मदमाता आया बसंत

संस्मरण

दादा लखमी– मन पर गहरी लकीर छोड़ती फिल्म

पंकज सुबीर
सिहोर(म.प्र.),
मो.– 7562405545

भोपाल के कैपिटल मॉल के आईनॉक्स में प्रसिद्ध अभिनेता यशपाल शर्मा द्वारा निर्देशित राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित हरयाणवी फिल्म 'दादा लखमी' के विशेष शो को देखने का अवसर मिला। सबसे पहले तो यह कि फिल्म भले ही हरयाणवी है लेकिन बहुत अच्छे से भाषा समझ में आ रही थी। इतनी हरयाणवी तो हम दंगल जैसी फिल्मों में सुन चुके हैं। फिल्म के बारे में क्या कहूँ, ज्यादा कहूँगा तो लगेगा कि अपने मित्र की प्रशंसा कर रहा हूँ। लेकिन सच कह रहा हूँ कि मैंने बरसों बाद कोई ऐसी फिल्म देखी जो पूरे समय बाँध के रखती हो। इतना कसा हुआ निर्देशन, संपादन कि कुर्सी से हिलने का अवसर भी न मिले। यशपाल शर्मा ने अपनी पहली ही फिल्म से बहुत बड़ी लकीर खींच दी है। उनके अभिनय का तो मैं हमेशा कायल रहा लेकिन इस फिल्म को देखकर मुझे लगा कि उनके अंदर का निर्देशक शायद उनके अंदर के अभिनेता से कहीं ज्यादा अच्छा है। बहुत चुनौतीपूर्ण है इस तरह की फिल्म बनाना और ऐसी बनाना कि दर्शकों को बाँध कर रख ले। आज के दर्शक को, जो कुछ ज्यादा ही व्यस्त हो गया है; यशपाल शर्मा ने न केवल इस चुनौती को स्वीकार किया है, बल्कि उसे पूरा भी करके दिखाया है। मेरा बस चले तो इस वर्ष के सारे पुरस्कार इस निर्देशक के नाम लिख दूँ। पिछले वर्ष हिन्दी फिल्म उद्योग का सबसे असफल वर्ष रहा है, हिन्दी फिल्में एक के बाद एक फ्लाप हुई हैं। हिन्दी फिल्म वालों को दादा लखमी देखना चाहिए, उनको समझ आएगा कि दर्शक क्या चाहता है। फिल्म हरियाणा में लगातार हाउसफुल चल रही है, जबकि रिलीज हुए दो माह से भी ज्यादा हो चुका है।

उतना ही शानदार कलाकारों का अभिनय है। किस कलाकार का नाम लूँ... लखमी की माँ के रूप में मेघना मलिक का बेजोड़ अभिनय है, मेघना मलिक जब भी परदे पर आती है, दर्शक मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। और उतना ही कमाल का अभिनय है उस बच्चे का जिसने बाल लखमी की भूमिका अदा की है। शायद योगेश वत्स नाम है उस बालक का। और राजेन्द्र गुप्ता जी... जिन्होंने नेत्रहीन गायक गुरु मानसिंह की भूमिका अदा की है, गजब... उनके अभिनय का तो मैं पहले से ही कायल हूँ लेकिन इस फिल्म में तो उन्होंने कमाल ही किया है। यशपाल शर्मा के फिल्म में बस शुरुआत में ही दो दृश्य हैं और दोनों में उन्होंने दादा लखमी को जीवंत कर दिया है। ऐसा लगता है जैसे दादा लखमी ऐसे ही रहे होंगे। उस मस्ती, उस बेफिक्री और उस कलंदरपन को क्या साकार किया है यशपाल शर्मा ने, हालाँकि उसके बाद फिर फिल्म में उनका रोल नहीं है, अब जब दादा लखमी का भाग–2 आएगा तो उसमें उनका रोल प्रारंभ होगा। यह फिल्म बाल लखमी और युवा लखमी की कहानी है। इंटरवल से पहले बाल और उसके बाद युवा। युवा लखमी का रोल भी हितेश शर्मा ने बहुत अच्छे से किया है, लेकिन इंटरवल से पहले जो अभिनय बाल लखमी के रूप में योगेश वत्स ने किया, वह दर्शकों के दिमाग से उतर नहीं पाता।

बहुत दिनों बाद कोई फिल्म देखी जो दर्शकों को इमोशनली कनेक्ट कर रही थी। मेरे पास की सीट पर वरिष्ठ कवि, कथाकार, उपन्यासकार आदरणीय संतोष चौबे जी बैठे थे, उन्होंने भी कहा कि फिल्म ने इमोशनल कर दिया। फिल्म इतनी साफ–सुथरी है कि कोई असहजता नहीं पैदा करती। और सबसे बड़ी बात यह है कि फिल्म में कोई फूहड़ हास्य के दृश्य या संवाद नहीं हैं, लेकिन उसके बाद भी फिल्म खूब गुदगुदाती है, हँसाती है। और फिर अगले ही दृश्य में आपकी पलकें भी नम कर देती है। मेघना मलिक और योगेश वत्स के बीच के संवाद, उनके बीच माँ और बेटे के रिश्ते की जो धूप–छाँव दिखाई गई है, वह दर्शकों को खूब गुदगुदाती है। स्थिति यह है कि कोई संवाद नहीं है, बस माँ बेटे को देख रही है और दर्शक हँस–हँस के लोटपोट हो रहे हैं। अपनी कहूँ तो बहुत दिनों बाद किसी फिल्म को देखते हुए हँसा। नहीं तो फूहड़ हास्य कार्यक्रमों और फिल्मों ने दिमाग की ऐसी हालत कर दी है कि कॉमेडी देखते हुए रोना आता है। यशपाल शर्मा ने निर्देशन में एक बड़ा कमाल यह किया है कि परिस्थितिजन्य हास्य पैदा किया है, जिन दृश्यों में हास्य है, उनमें वह दृश्य में ही अन्तर्निहित है, बाहर से ठूँसा नहीं गया है।

इस फिल्म का एक और बहुत सशक्त पक्ष इस फिल्म की फोटोग्राफी और इसके सेट्स हैं। क्या कमाल है! 1900 के आस–पास के हरियाणा का गाँव साकार कर दिया है। बहुत अच्छे मित्र और चित्रकार भाई जयंत देशमुख को भी बहुत–बहुत बधाई। कैमरे और सेट्स ने मिल कर एक अलग ही दुनिया रच दी है फिल्म में। जयंत देशमुख जी इस तरह का कमाल करते रहते हैं, लेकिन इस फिल्म में गाँव की, घर की, वस्तुओं की डिटेलिंग देखने लायक है। मैं तो कई बार फिल्म को छोड़कर सेट्स की बारीकी में उलझ जाता था। यह फिल्म एक बार फिर उस तथ्य को स्थापित कर देती है कि फिल्म एक ऐसी विधा है जो कई सारे गुणीजनों के एक साथ मिलने पर बनती है, न कि आजकल की तथाकथित फिल्मों की तरह, जिनमें एक निर्देशक और एक सुपर स्टार मिल कर सोचते हैं कि हम ही सब कुछ कर लेंगे। यह फिल्म सामूहिक प्रभाव का महत्व भी बताती है कि केवल अच्छे दृश्य से सब कुछ नहीं होगा, उसके साथ अच्छा अभिनय भी होना जरूरी है। बस कुछ सामूहिक प्रभाव से होता है। सरशार सैलानी की गजल का मतला है न– चमन में इख्तिलात–ए–रंग–ओ–बू से बनती है, हम ही हम हैं तो क्या हम हैं तुम ही तुम हो तो क्या तुम हो।

अब बात करते हैं संगीत की। चूँकि यह फिल्म एक गायक, एक कवि के जीवन पर आधारित है, इसलिए इसमें सबसे महत्वपूर्ण संगीत की भूमिका होगी यह तो तय ही था। उस पर संगीत निर्देशक भी कौन? मेरे प्रिय उत्तम सिंह, दिल तो पागल है से लेकर दुश्मन फिल्म का चिट्ठी न कोई संदेश रचने वाले उत्तम सिंह। क्या संगीत दिया है फिल्म में उन्होंने। गजब! आप यदि उत्तम सिंह का संगीत पहले से भी सुनते रहे हैं तो आप पाएँगे कि उनके संगीत में बहुत अलग बीट्स होती हैं ताल वाद्यों की, और उनके संगीत में एक गूँज होती है। वह गूँज इस फिल्म में जैसे ब्रह्माण्ड का नाद बन कर उपस्थित है। क्या कमाल के गाने बनाए हैं, वाह और उतने ही कमाल के शब्द तथा गायकी भी। एक गीत पर राजेन्द्र गुप्ता जी ने नेत्रहीन गायक के रूप में गजब किया है। इस फिल्म के गाने बहुत दिनों तक दिमाग में रहेंगे।

कुल मिलाकर बात यह है कि अगर आपको भी एक साफ–सुथरी फिल्म देखनी हो, एक सचमुच की फिल्म देखनी हो तो दादा लखमी जरूर देखिए। दु:ख की बात है कि ऐसी फिल्में पूरे भारत में रिलीज नहीं हो पातीं। लेकिन आप के आस–पास अगर यह फिल्म लगी हो तो जरूर जाकर देखिए। यह फिल्म चंदन धूप की गंध की तरह देर तक आपको सुवासित करती रहेगी। आप इसके प्रभाव से निकल ही नहीं पाएँगे। जबकि यह फिल्म अभी भी अधूरी है, केवल पहला पार्ट ही है फिल्म का। उसके बाद भी मन पर गहरी लकीर छोड़ कर फिल्म समाप्त होती है। बहुत दिनों बाद किसी फिल्म में दर्शकों की तालियाँ बजती देखीं। फिर कभी अवसर होगा तो इस फिल्म पर विस्तार के साथ बात करूँगा, फिलहाल तो बस इतना ही है। अंत में एक बार जो बाहर आते समय कवि विनय उपाध्याय जी ने कही– 'पंकज भाई! क्या कमाल का निर्देशन है, बस यह निर्देशक मुंबई की मुंबइया फिल्मों में न उलझ जाए।'

कहानी

मन के मुड़ेर पर

रंजना जायसवाल
लालबाग कॉलोनी, मिर्जापुर (उ.प्र),
मो.– 9415479796

"मम्मी, मैं कॉलेज जा रही हूँ, आज थोड़ा लेट आऊँगी... सेमिनार है।"

"ठीक है, अनु जरा सँभल के जाना।"

"क्या मम्मी, आप भी न। आज भी मुझे छोटी–सी बच्ची ही समझती हो। यहाँ मत जाया कर, वहाँ मत जाया कर।"

"हाँ–हाँ, जानती हूँ तू बहुत बड़ी हो गयी है, पर मेरे लिए तो तू आज भी वही गोल–मटोल–सी मेरी प्यारी–सी अनु है।"

तनु के चेहरे पर एक मासूम–सी मुस्कुराहट तैरने लगी।

"अच्छा–अच्छा!... अब जल्दी कर ज्यादा बातें न बना, कॉलेज जाने में देर हो जाएगी।"

माँ–बेटी में मधुर नोंक–छोंक चल ही रही थी कि तब तक अम्मा जी हाथ में तुलसी की माला लिए प्रकट हुई।

"कहाँ चली सवारी, इतनी सुबह–सुबह।"

"दादी मेरी एक्सट्रा क्लासेस हैं। बस कॉलेज के लिए निकल रही हूँ।"

"ठीक है–ठीक है पढ़ाई–लिखाई तो होती रहेगी, पर कभी–कभी अपनी दादी के पास भी बैठ जाया कर, तेरी दादी का भी क्या भरोसा कब कान्हा जी के यहाँ से बुलावा आ जाए।"

अम्मा जी ने दार्शनिकों की तरह कहा। रोज का ही किस्सा था, जब तक दादी दो–चार ऐसी बातें न बोल दें तब तक उनको चैन नहीं मिलता था।

अनु ने दादी के गले में हाथ डालकर कहा, "मेरी प्यारी दादी! अभी आप इतनी जल्दी मुझे छोड़कर नहीं जा रही। अभी तो आपको मेरी शादी में तड़कता–भड़कता डांस भी करना है।"

"चल हट तू भी न जब देखो तब..."

अनु की बात सुनकर अम्मा लजा गई। तभी अनु ने जया की तरफ रुख किया, "मम्मी!... मैं सोच रही हूँ कि मैं भी कंप्यूटर की क्लासेस ज्वॉइन कर लूँ। इधर पढ़ाई का लोड भी थोड़ा कम है।"

"अरे यह सब छोड़ अब चौके में माँ का हाथ बटाया कर, तुझे दूसरे घर भी जाना है... कंप्यूटर–संप्यूटर कुछ काम नहीं आने वाला। माँ के साथ घर का काम करना सीख, नहीं तो ससुराल वाले उलाहना देने लगेंगे।"

"क्या दादी आप भी न... किस जमाने की बात कर रही हैं..."

दादी ने अनु के सर पर हाथ फेरते हुए कहा, "बेटा तू कुछ भी कर ले, कुछ भी सीख ले पर चौके का काम नहीं सीखा तो सब बेकार है। यह समाज औरतों के लिए कभी नहीं बदलता।"

...और न जाने क्या सोचकर अम्मा की आँखें भर आई। जया भी अम्मा को इस तरह से भावुक देखकर आश्चर्य में पड़ गयी। आज सुबह–सुबह ही बाबूजी से अम्मा की किसी बात पर नोंक–झोंक हो गयी थी, बाबूजी ने अम्मा जी से कह दिया था कि तुम दिन भर करती क्या हो। यह बात शायद उनके दिल को चुभ गयी थी। जया अम्मा जी से कुछ कहना चाह रही थी... पर शब्द उसके गले में ही अटक गए।

अम्मा ने अपने आप को संभाला और जया की तरफ रुख कर के कहा, "अब इसको अपने साथ चौके में भी काम सिखाया करो। पढ़ाई–लिखाई तो होती रहेगी और अनु! ये जो कंप्यूटर–संप्यूटर का भूत है न इसे अपने घर जाकर पूरा करना।"

जया सोच में पड़ गयी... अपना घर। अम्मा जी की नजर में अपना घर आखिर कौन–सा था, जहाँ अनु रहती थी क्या वह घर उसका अपना घर नहीं था। शादी के पहले जब उसने अपनी माँ से कत्थक सीखने के लिए जिद की थी तो बाबूजी कितने नाराज हुए थे... अच्छे घर की लड़कियाँ यह सब नहीं सीखतीं, जब तुम अपने घर जाना तब यह सब नाटक करना मेरे घर यह सब चोंचलेबाजी नहीं चलेगी। जया सोचने लगी वक्त बदल गया, पीढ़ियाँ बदल गयीं पर आज भी यह निर्णय नहीं हो पाया कि बेटियों का असली घर कौन–सा होता है। अनु कॉलेज चली गयी और जया घर के कामों में लग गयी।

दिन भर काम करते–करते उसकी कमर अकड़ गयी थी। न जाने क्यों उसका मन बार–बार विचलित हो रहा था। कल रात में ही अम्मा ने एक तस्वीर दिखाई थी, अनु अब शादी लायक हो गयी है, अब जल्दी से इसके हाथ पीले करने हैं। तुम्हारे बाबूजी की यही अंतिम इच्छा है कि मरने से पहले वो पोती को विदा कर दें। जया अम्मा का मुँह आश्चर्य से देखती रह गयी। अभी उसकी उम्र ही क्या है, अभी तो उसका कॉलेज भी पूरा नहीं हुआ है और अभी से शादी...। उसने न जाने कितने सपने देखे हैं उसके उन मासूम सपनों का क्या...!

"अम्मा जी अभी तो अनु बहुत छोटी है, अभी से शादी की बातें...?"

"अरे मैंने ऐसा क्या कह दिया... लड़की जब कंधे के बराबर आने लगे तो उसके हाथ पीले कर देने चाहिए। राम जाने कोई ऊँच–नीच हो जाए तो... क्या तुम किसी ऊँच–नीच का इंतजार कर रही हो।"

जया अम्मा का मुँह देखती रह गयी, क्या उन्हें अपनी परवरिश पर जरा भी भरोसा नहीं है। बाबूजी की अंतिम इच्छा के लिए अनु की बलि देना कहाँ तक सही है। आनन्द हमेशा की तरह अपनी माँ के सामने मुँह नहीं खोल पाए..., आज भी वही हुआ। जया आखिर कहाँ तक अनु की पैरवी करती। आनन्द ने तस्वीर पर निगाह डाली। लड़का सुंदर, सजीला और संभ्रांत लग रहा था।

"अम्मा लड़का तो देखने में काफी अच्छा लग रहा है।"

"मैं भी तो यही कह रही हूँ कि खाता–पीता परिवार है, अपनी अनु खुश रहेगी... अपनी मैडम को समझा लो, इन्हीं को न जाने क्या दिक्कत है।"

अम्मा की तीर–सी चुभती बातों ने जया को बेचैन कर दिया। आनन्द चुपचाप अम्मा की बातों को सुनते रहे, जया को इससे ज्यादा आनन्द से उम्मीद भी नहीं थी।

"अनु को यह तस्वीर दिखा देना, कल यह न हो कि तुम्हारी लाडली कहे कि बिना पूछे शादी कर दी।"

जया कसमसा कर रह गयी। तभी किसी आवाज से उसकी आँखें खुल गयीं। सामने अम्मा जी खड़ी थीं... वह हड़बड़ा कर पलंग पर बैठ गयी।

"क्या हुआ अम्मा जी किसी चीज की जरूरत थी क्या... मुझे आवाज दे दिया होता, मैं आ गयी होती।"

"ठीक है... ठीक है!... सारे घर की चिंता तो मुझे ही करनी है, फिर मुझे मिलने

आना ही पड़ता। अपनी बिटिया को फोटो दिखाई कि नहीं कि वैसे ही दराज में पड़ी हुई है।"

जया के पास उनकी बात का कोई जवाब नहीं था।

"समझ गयी... अभी तक तुमने कोई बात नहीं की होगी अपनी लाडो से। एक काम ठीक से नहीं करती, लाओ वह तस्वीर मुझे दे दो... मैं ही बात कर लूँगी...।"

"नहीं–नहीं अम्मा जी ऐसी कोई बात नहीं है, काम की व्यस्तता में भूल ही गयी थी।"

"भूल गयी थी...!"

अम्मा ने तिरछी निगाह से जया को देखा जैसे उसकी चोरी पकड़ी गयी हो। सच में जब जया ही इस रिश्ते के लिए तैयार नहीं थी, वो अनु से क्या कहती। ऐसा नहीं था कि उसे लड़का पसंद नहीं था पर वह इतनी जल्दी अनु की शादी नहीं करना चाहती थी। उसके भी कुछ सपने थे... कुछ अरमान थे। वह नहीं चाहती थी कि घर वालों की इच्छाओं के आगे उसके सपने दम तोड़ दें।

"मैं आज जरूर पूछ लूँगी...।"

"तुम तो रहने ही दो, तुमसे कोई काम ठीक से नहीं होता। मुझे फोटो दे दो मैं ही पूछ लूँगी।"

"नहीं–नहीं अम्मा जी!... ऐसी कोई बात नहीं है। आज शाम तक का समय दीजिए, मैं उससे जरूर पूछ लूँगी।"

"ठीक है–ठीक है!... आज जरूर पूछ लेना और अगर तुमसे न हो पाए तो मुझे बता देना मैं ये काम भी कर लूँगी।"

जया चुपचाप अम्मा की बातों को सुनती रहीं। अम्मा कमरे से बाहर चली गयी, तभी दरवाजे पर दस्तक हुई। शाम हो गयी थी। लगता है अनु कॉलेज से वापस आ गयी। जया ने अपने साड़ी के पल्लू को ठीक किया और दरवाजे की ओर बढ़ी। अनु के चेहरे पर खुशी की लहर दौड़ रही थी।

"मम्मी–मम्मी!... मैं आज बहुत खुश हूँ। पूरा हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा था। हर व्यक्ति की आँखों में मेरे लिए प्रशंसा का स्वर था। जानती हो मम्मी, आर. के. सर ने कहा तुम बहुत अच्छा बोलती हो। इसी तरह पढ़ाई पर ध्यान दो, एक–न–एक दिन तुम कुछ–न–कुछ जरूर करोगी। मम्मी तुम जानती नहीं मैं आज कितना खुश हूँ।"

जया उसके मासूम चेहरे पर खुशी देखकर मन–ही–मन भावुक हो रही थी। कैसे समझाए घर वालों को और कैसे बताएँ अनु को कि उसकी खुशियों को, उसके सपनों को तोड़ने की तैयारी शुरू हो चुकी थी। अनु न जाने कितनी देर तक बोलती रही, जया समझ नहीं पा रही थी कि वो अपनी बात कहाँ से शुरू करे। कैसे इस मासूम–सी बच्ची के अरमानों का गला घोंट दें।

"क्या हुआ माँ कुछ कहना चाहती हो?"

"नहीं बेटा!... ऐसी तो कोई बात नहीं...।"

अनु ने बड़े ही लाड़ से उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर आँखों में आँखें डालकर पूछा, "माँ!... मैं इतनी बड़ी तो हो गयी हूँ कि तुम्हारे दिल की बातों को समझ सकूँ।"

जया का दिल भर आया, "अनु! तुम्हारी दादी तुम्हारे लिए एक रिश्ता लेकर आयी हैं। बहुत ही अच्छा रिश्ता है, एक बार फोटो देख लो।"

जया ने धीरे से तस्वीर अनु की तरफ सरका दी। अनु का हाथ काँप गया, उसके हाथ के कँपन को जया ने भी महसूस किया।

"माँ इतनी जल्दी भी क्या है, अभी तो मुझे जिंदगी में बहुत कुछ करना है और आप सब अभी से शुरू हो गए।"

"एक बार तस्वीर तो देख लो, हो सकता है लड़का तुम्हें पसंद आ जाए।"

अनु गुस्से से बिफर उठी, "बात पसंद या नापसंद की नहीं है, बात मेरे जीवन की है। सच बताओ, माँ क्या तुम भी यही चाहती हो।"

जया के पास अनु की किसी भी बात का कोई जवाब नहीं था।

अनु ने बड़े ही संजीदा स्वर में कहा, "माँ!... क्या तुम भी यही चाहती हो जो सारी दुनिया चाहती है, तो मैं तुम्हारी बात नहीं टालूँगी।"

जया अनु को देखती रह गयी, उस छोटे से वाक्य ने न जाने कितना कुछ कह दिया। जया चुपचाप तस्वीर को उठाकर अपने कमरे में चली आई... पर बात वहीं खत्म नहीं हुई थी। बात तो अब शुरू हुई थी, दादी ने दूसरे दिन जया को रोक कर पूछ लिया, "जया! अनु से कोई बात हुई, उसे तस्वीर दिखाई...?"

"जी!... वो।"

"अगर तुमसे नहीं हो सकता तो मुझे बताओ मैं अभी अनु से पूछती हूँ... अनु–अनु!"

अनु कॉलेज जाने के लिए तैयार हो रही थी, अम्मा की आवाज को सुनकर राहुल, बाबूजी और अनु कमरे से बाहर आ गए।

"क्या हुआ दादी, आप इतनी जोर–जोर से क्या चिल्ला रही हैं।"

"अनु मुझे लाग–लपेट के बात करनी नहीं आती, तुम्हारी शादी के लिए बहुत अच्छा रिश्ता आया है। तुम्हारी माँ ने शायद उसकी तस्वीर दिखायी होगी... हम सबको रिश्ता बहुत पसंद है। तुम भी तस्वीर देख लो लड़के वालों को जवाब देना है।"

"दादी ऐसी भी क्या जल्दी है, अभी मेरी उम्र ही क्या है, अभी तो मेरी पढ़ाई भी पूरी नहीं हुई और आप सब मुझे विदा करने के लिए तैयार बैठे हुए हैं।"

"हर चीज का एक वक्त होता है, शादी की उम्र निकल जाएगी तो हाथ मलते रह जाओगी...।"

"पर दादी...!"

"पर–वर कुछ नहीं, मैंने जो कह दिया सो कह दिया, तुम्हारे दादाजी की भी यही इच्छा है।"

ड्राइंग रूम में एक अजीब–सा सन्नाटा पसर गया, तभी एक गंभीर–सी आवाज ने इस सन्नाटे को तोड़ा।

"अम्मा जी!... अगर अनु नहीं चाहती है कि उसकी शादी अभी हो... तो हमें उसकी शादी अभी नहीं करनी चाहिए।"

अम्मा जी ने जलती हुई निगाह से जया की तरफ देखा, "देख रहे हैं आनन्द के पापा!... इनके भी पर निकल आए हैं। कैसी माँ हो तुम, अपनी बेटी को समझाना चाहिए तो तुम उसके गलत फैसले में उसको बढ़ावा दे रही हो।"

"नहीं अम्मा जी!... यह उसकी जिंदगी है, उसकी जिंदगी के फैसले भी

उसी के होंगे, हम सब उसकी जिंदगी के फैसले नहीं लेंगे।"

"वाह–वाह!... क्या बात कही।"

अम्मा जी ने चिढ़कर कहा, "इसका मतलब यह है कि हमारे माँ–बाप और उनके माँ–बाप ने अब तक अपनी बेटियों के लिए जो फैसले लिए वह गलत थे। जय हो भोलेनाथ, अब यही सुनना बाकी था।"

जया ने बड़े ही संजीदा स्वर में कहा, "काश! मेरे पापा ने भी मुझसे शादी करने से पहले एक बार... हाँ सिर्फ एक बार पूछा तो होता।"

आनन्द जया को आश्चर्य से देख रहे थे, "क्या कमी है तुम्हारी जिंदगी में, सब कुछ तो है। आनन्द जैसा पति, इतना अच्छा घर, संतान का सुख और क्या चाहिए औरत को...।"

अम्मा जी ने अपनी बात की पैरवी की, "अम्मा जी!... क्या सिर्फ औरत को यही चाहिए होता है। सिर्फ पति का प्यार, पैसा और एक अच्छा घर। क्या औरत सिर्फ यही चाहती है। सोच कर देखिए, जिस उम्र में हमारी शादी हुई तब उस नाजुक उम्र में गृहस्थी का बोझ सहने लायक हमारी उम्र भी नहीं थी...। पर बहू के तौर पर मुझे वह सब कुछ करना पड़ा जो मैं करना नहीं चाहती थी। बात सिर्फ कमी की नहीं है अम्माजी, बात आत्मसम्मान की है। शादी की वजह से मेरी पढ़ाई बीच में ही छूट गयी, यह आप सब जानते हैं। मेरे भी बहुत सारे सपने थे, मैं भी यही चाहती थी कि औरों की तरह मैं भी पढ़–लिख सकूँ और अपने पैरों पर खड़ी हो सकूँ। पर यह सपना... सपना ही रह गया। हम बेटी को पढ़ाने की बात तो करते हैं पर उसे सपने देखने और फैसले लेने का अधिकार नहीं देते, फिर ऐसी पढ़ाई का क्या फायदा...।

"मुझे अपने पति से कोई शिकायत नहीं है पर जब किसी मुद्दे पर मेरी उनसे बहस होती है तो अक्सर वह मुझसे कह देते हैं कि तुम चुप रहो, तुम्हें समझ में नहीं आएगा। आपकी गृहस्थी को देखने वाली, आपके बच्चों को पालने वाली, आपके माता–पिता की सेवा करने वाली आपकी पत्नी सिर्फ आपसे इसलिए कम है क्योंकि वह आपकी तरह पढ़ी–लिखी नहीं है। यह अफसोस मुझे जीवन भर रहा और आगे भी रहेगा कि काश! मैंने अपने पिता के फैसले का विरोध किया होता, काश! मेरे पिता ने मुझसे मेरी राय माँगी होती तो शायद मेरा जीवन और भी खुशहाल होता और मैं आप सभी को आत्मसम्मान के साथ स्वीकार कर पाती।"

बाबूजी एकटक जया को देख रहे थे, उन्होंने जया के सर पर हाथ फेरते हुए कहा, "दूसरे के सुख–दु:ख को समझने वाली मेरी बहू के दर्द को इस घर ने कभी नहीं समझा... मुझे फक्र है कि मुझे तुम्हारी जैसी बहू मिली।"

अम्मा की आँखों से भी झर–झर आँसू बह रहे थे, शायद एक औरत के संघर्ष को एक औरत ही बेहतर ढंग से समझ सकती है और आज अम्मा जी ने भी इस बात को अच्छी तरह समझ लिया था। सभी की आँखों में आँसू भरे हुए थे और चेहरे पर एक सहज मुस्कान... आज सूरज दिलों के अँधेरों को दूर कर एक नए प्रकाश के साथ आसमान में देदीप्यमान था। आज मन के मुंडेर पर उम्मीद का दीया टिमटिमा रहा था।

कविताएँ

संजय वर्मा 'दृष्टि'
125, बलिदानी भगतसिंह मार्ग, मनावर(धार) म.प्र.,
मो.– 9893070756

बाराती

पहाड़ों पर टेसू
रंग बिखर जाते
लगता पहाड़ ने
बांध रखा हो सेहरा
घर के आँगन में
टेसू का मन नहीं लगता
उसे सदैव सुहाती
पहाड़ की आबो हवा
मेहंदी की बागड़ से
आती महक
लगता कोई
रचा रही हो मेहंदी
पीली सरसों की बगिया
लगता जैसे शादी के लिए
बगिया के हाथ कर दिए गए हों पीले
भंवरे–कोयल गा रहे स्वागत गीत
दिखता प्रकृति भी रचाती विवाह
उगते फूल आमों पर आती बहारें
आमों की घनी छाँव तले
जीव बना लेते
शादी का पंडाल
ये ही तो हैं असल में
प्रकृति के बाराती
नदियां कल–कल कर
उन्हें लोक गीत सुनाती
एक तरफ पगडंडियों से
निकल रही इंसानों की बारात
सूरज मुस्कुराया
धरती के कानों में धीमे से कहा–
लो आ गई एक और बारात
आमों के वृक्ष तले।

धड़कन

धड़कन से पूछता
जुबां नहीं होती तो दिल का हाल
कैसे बयां करती
तेरी नजदीकियां
बहारों से पूछता बिन हवाओं
कौन रखता
खुशबू का हिसाब
फूल नादाँ भौंरे नादाँ
गुंजन कर
किसको देते संकेत
कहीं तुम तो नहीं निकल रही
जब तो आम के मोर और टेसू के फूल
झांक रहे
टहनियों की खिड़कियों से
लगता वसंत ला रहा
तुम्हारे आने का पैगाम
धड़कन की जुबां भी अब गुनगुनाने लगी
इस मौसम में दिल की धड़कन
बयां करती तेरी नजदीकियां।

कहानी

बेनूर

वंदना सहाय
जबलपुर, नागपुर
9168263178

“लतिका! जरा फेस–पैक तैयार करना”, कहती हुई सुवर्णा ने अपने कन्धों पर बेतरतीबी से बिखर रहे बालों को हाथ में लपेट कर जूड़ा बनाया और स्वयं ब्यूटी–पार्लर के कोने में सुरुचिपूर्ण ढंग से रखे गए काउच पर लेट गई। रात के आठ बजने वाले थे और अब वह वाकई बुरी तरह से थक चुकी थी।

सुबह के दस बजे से जो वह अपना पार्लर खोलती तो फिर उसे रात में जाकर ही फुर्सत मिलती, लगन के दिन जो आ गए थे। जो लड़कियाँ वधुएँ बनने जा रही थीं, उनका तो सुवर्णा के पार्लर में ताँता लगा रहता।

काउच पर लेटी सुवर्णा का दिमाग घड़ी की सूई की तरह घूमने लगा। वह सोचने लगी— न जाने क्या जादू है उसके इन साँवले और साधारण दिखते हाथों में, जो खुद खूबसूरत न रहते हुए भी जिन्हें सजाते–संवारते हैं, उनमें एक जादुई निखार–सा आ जाता है।

उसके ब्राइडल मेक–अप करने की चर्चा दूर–दूर तक थी। साधारण रंग–रूप वाली लड़कियाँ भी उसके मेक–अप करने से अनिंद्य सुंदरी दिखाई देती थीं। सीधी–साधी भवें उसके थ्रेडिंग करने से कमान का रूप ले लेतीं और कांतिहीन त्वचा भी उसके फेशियल करने से दमक उठती। बस, वह स्वयं वंचित रह जाती थी— अपने इस जादुई छुअन से।

सुबह से शाम तक सबको खूबसूरती बाँट जब वह थक अपने साधारण नाक–नक्श वाले चेहरे को धो–पोंछ कर आईने में देखती तो उसे लग जाता कि अपने जीवन के बत्तीसवें वर्ष में एक बार फिर वह इस लगन में अनब्याही रह जाएगी।

“मैम, फेस–पैक तैयार है” की आवाज से सुवर्णा के विचारों का क्रम टूटा। उसकी सहायिका उसे बुला रही थी।

“ठीक है, आती हूँ”, सुवर्णा ने अपनी आवाज को सहज बनाते हुए कहा और उठकर अपने काम में जुट गई। कई सहायिकाओं के रहते हुए भी उसका स्वयं काम करना ही उसके पार्लर की सफलता का एक बड़ा राज था। लेकिन जाने आज क्यों सुवर्णा अपने–आप को बहुत क्लांत महसूस कर रही थी।

वातानुकूलित पार्लर में भी उसे हल्का–सा पसीना हो आया था। यह तो अच्छा था कि आज कोई लड़की उसके पार्लर में वधू के रूप में सजने के लिए नहीं आई थी, वर्ना वह अपनी थकान के कारण अपने काम के साथ पूरी तरह से न्याय नहीं कर पाती।

वह पार्लर बंद करवा पेवमेंट पर उसी जगह आकर खड़ी हो अपने छोटे भाई अर्पित का रोज की तरह इंतजार करने लगी, जहाँ रोशनी और अंधेरा आपस में लुका–छिपी खेला करते। पूरी तरह से रोशनी में खड़ा रहना अजीब–सा लगता, जैसे सड़क पर चलती हुई हर निगाह उसे ही घूर रही हो।

ख्याल एक बार फिर बरसाती बादलों की तरह उसके दिमाग में घुमड़ने लगे— लगता है फिर आज अर्पित देर से आएगा, ढेर सारे बहाने बनाते हुए। क्या जरूरत है उसके माता–पिता को उसे घर ले जाने के लिए अर्पित को भेजने की? क्या बस यहीं पर उनका दायित्व समाप्त हो जाता है? या फिर यह उनकी मध्यमवर्गीय मानसिकता है जो उसकी स्वतंत्रता की सीमा–रेखा खींचना चाहता है।

थकान के मारे अब उसे और ज्यादा देर खड़ा नहीं हुआ जा रहा था और वह घर जल्दी पहुँचना चाहती थी। ‘घर’ शब्द का ख्याल आते ही सुवर्णा को लगता जैसे किसी ने बिना पकाया हुआ मशरुम उसके मुँह में डाल दिया हो— बिल्कुल नीरस और बेस्वाद। इसके साथ ही उसे अपने पिता की संवेदनहीन आँखें याद आने लगतीं जो ज्यादातर शराब के नशे में लाल और क्रोधित रहतीं।

पिता जब कभी उस पर या उसके अन्य भाई–बहनों पर बिना वजह चिल्लाते तो माँ कभी भी खुल कर उसके पिता का विरोध न कर पाती। वह कभी अपने बच्चों का तो कभी अपने पति का मुँह देखती। उसकी आँखों में कसाई के घर जाती हुई गाय की बेचारगी झलकती। पिता का दु:साहस और भी बढ़ जाता।

सुवर्णा के पिता, जो नौकरी करते थे, उससे परिवार का भरण–पोषण ठीक से हो सकता था किन्तु उनके नशे की लत ने घर की आर्थिक स्थिति को बुरी तरह से झकझोर कर रख दिया था। पिता को न कभी अपने बेटों की पढ़ाई की चिंता होती और न ही कभी अपनी बेटियों के ब्याह की।

घर में जब भी होते तो अखबार को बिखेर कर पढ़ते या एक ही न्यूज चैनल को लगा उस पर बार–बार दुहराए जाते समाचारों को देखते। उससे समय मिलता तो शाम होते ही पैरों में स्पोर्ट्स शूज डाल, हाथ में बेंत ले पालतू कुत्ते की चेन पकड़ टहलने निकल जाते।

शायद पिता होने के लिए त्याग और वात्सल्य जैसे दो नितांत आवश्यक गुणों का उनमें सर्वथा अभाव था। सुवर्णा कब अपने सब भाई–बहनों के साथ वात्सल्य से वंचित रह बड़ी हो गयी, उसे पता ही न चला।

आयुष भैया शुरू से ही बहुत सुधरी बुद्धि के थे। उन्होंने तो बहुत पहले से ही पिता से पैसे लेना बंद कर अपनी पढ़ाई ट्यूशन पढ़ा कर पूरी की थी। पढ़ाई में अच्छे होने के कारण उन्हें पढ़ाई पूरी करते ही नौकरी मिल गयी। नौकरी के मिलते ही उन्होंने अपनी अलग ही दुनिया बसा ली थी, क्योंकि वे जानते थे कि ऐसे वात्सल्य से बंजर भूमि पर आगे रिश्तों की फसल उगा पाना नामुमकिन था।

बड़ी दीदी अपर्णा की शादी में भी पिता को कोई मुश्किल नहीं उठानी पड़ी। अपर्णा दीदी देखने में अच्छी थीं, इसीलिए लड़के वालों ने दीदी का हाथ माँग लिया था। लेकिन, लड़का कुछ खास काम नहीं करता था और अपर्णा दीदी को अपनी ससुराल में बात–बात पर दिक्कत होती। इसीलिए वह अपना ससुराल छोड़ उन्हीं लोगों के साथ रहने लगी थी।

छोटा भाई अर्पित तो पढ़ाई से कोसों दूर रहता था। वह दिन–रात आँखों में मटरगश्ती करने का सपना लिए घूमता रहता था। ढेर सारे शौक पाल रखने के कारण जब उसके जेब–खर्च कम पड़ते तो वह उसी के आगे हाथ पसारता था।

घर में बस उसकी एक छोटी बहन नैना ही थी जो रिश्तों के विरल वन में एक सशक्त छायादार वृक्ष का काम किया करती थी। दोनों एक–दूसरे के दुख–सुख से वाकिफ थीं। सुवर्णा का प्रेम नैना के लिए माँ–जैसा था। वह छोटी बहन के पढ़ने–लिखने से लेकर हर तरह के खर्चे उठाया करती थी।

पिता कभी भी बच्चों की दिक्कतों को समझने की कोशिश न करते थे। वे पिता का कर्त्तव्य कम और अधिकार ज्यादा जताते थे। बच्चों को ऊब–सी होने लगती।

सुवर्णा के पास अब ईश्वर की दया से पैसों की कोई कमी न रह गयी थी। शादी के लिए भले ही उसने वांछित उम्र पार कर ली थी, पर इस उम्र में उसने जो दौलत कमाई थी, वह उसकी मेहनत से ही संभव हुआ था।

उसने तो बारहवीं पास कर यूँ ही अपने आप को घर की घुटन से दूर रखने के लिए अपनी दीदी की सहेली के पार्लर में काम सीखना शुरू कर दिया था। पर उसके काम करने का अंदाज महिला ग्राहकों को इतना पसंद आया कि उसकी दीदी की सहेली ने उसे अच्छी तनख्वाह देकर अपने पार्लर में काम करने के लिए रख लिया। पार्लर में काम करते हुए ही उसने ब्यूटिशियन का कोर्स पूरा किया और वहाँ कई वर्षों तक काम करने के बाद अपना एक अलग ब्यूटी पार्लर खोल लिया। और यहाँ से जो शुरू हुआ सुवर्णा के हाथों के हुनर का जादू तो फिर सुवर्णा ने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। आज उसका ब्यूटी पार्लर शहर के गिने–चुने पार्लरों में से एक था।

"मैं कब से तुम्हें आवाज दिए जा रहा हूँ और एक तुम हो कि सुनने का नाम ही नहीं लेती। क्या हुआ, तुम्हारा ध्यान किधर है?"

सुवर्णा को लगा जैसे कि वह नींद से जाग गयी हो। उसकी तन्द्रा टूटी। उसने सामने देखा तो अर्पित बाइक पर बैठा न जाने कब से उसे आवाजें दिए जा रहा था।

अर्पित की बात को अनसुनी कर अपनी आवाज में उठते तूफान को शांत करने की कोशिश करते हुए सुवर्णा ने कहा– "आज फिर से देर कर दी। मालूम है, मैं कब से तुम्हारी राह देख रही हूँ। शायद तुम समझ नहीं सकते कि दस–बारह घंटे काम करने के बाद आदमी कितना थक जाता है।"

सुवर्णा ने कोई कटाक्ष नहीं किया था, यह बात उसके होंठ अनायास बोल पड़े थे। गंजे सिर पर जैसे पानी नहीं ठहरता है, वैसे ही बिना विचलित हुए अर्पित बनावटी मुस्कुराहट होठों पर घसीटता हुआ बोल पड़ा– "तुम्हें तो पता ही है, पुरानी बाइक कैसी होती है। आज फिर धोखा दे गई थी। बड़ी मुश्किल से गराज से बनवा कर ला रहा हूँ। तुमने तो कहा था कि इसे बेच कर नई कार खरीद लेते हैं पर तुमने तो ध्यान ही नहीं दिया।"

"हूँ", सुवर्णा अपने होठों को भींचते हुए इतना ही कह पाई। बड़े जतन से आफ्टर–शेव की खुशबू से छुपाए गए शराब की महक को सुवर्णा ने पहचान कर कई अनपूछे सवालों को अपने अंदर समाहित कर लिया।

बाइक की स्पीड से भागते हुए सुवर्णा के शरीर को ब्रेक लगी। घर आ चुका था। बाइक से उतरते ही सुवर्णा बिना किसी से नजरें मिलाए सीधे अपने कमरे की ओर जाने लगी। बस, रास्ते में दीदी के बेटे पुलक को औपचारिक ढंग से दुलार दिया।

सुवर्णा फ्रेश हो गाउन डाल कमरे से बाहर निकली तो सामने चौके में गैस–चूल्हे पर प्रेशर–कुकर चढ़ा हुआ था और लगता था जैसे कि कुकर अंदर ही अंदर दबाववश उबल कर सीटी न दे चीख रहा था। पिछले कई वर्षों से वह भी दबाववश उबल रही थी और आज उसका मन चीखने को कर रहा था।

माँ गुंधे हुए आटे के पहाड़ के साथ घर के सदस्यों के खाने की राह देखती। सदस्यों के रोटियाँ खाना शुरू करने के साथ ही माँ के हाथ भी आटे के पहाड़ पर पर्वतारोहण शुरू कर देते जो उन सब के रोटियाँ खा लेने के बाद स्वतः बंद हो जाता क्योंकि उसके बाद आटे के पहाड़ का उन्नत शीर्ष कठौती की सतह से जा मिलता।

सुवर्णा को देख उसकी माँ ने हुलस कर पूछ लिया "कैसा रहा आज का दिन?"

"ठीक!" सुवर्णा के एक शब्द के उत्तर ने माँ की आँखों में तैर रहे ढेर सारे सवालों को धराशायी कर दिया। सुवर्णा ने जल्दी–जल्दी कटोरियों में दाल–सब्जी उड़ेली और दो रोटियों को निकाल कर अपने प्लेट में ऐसे डाला जैसे कि वह उतनी ही रोटियाँ खाना चाहती हो, जिससे कि वह सिर्फ जिंदा रह सके।

वह खाने को बिना चबाए ही पानी के साथ जल्दी से गटक जाना चाहती थी क्योंकि उसे डर था कि कहीं बीच में ही उसके पिता कमरे से बाहर आ व्यर्थ में ही अपने पिता होने का अधिकार न जता बैठें। वह रोज–रोज के धुले और निचोड़े प्रश्नों की गन्दी तह तक नहीं जाना चाहती थी।

सुवर्णा जल्दी से खाना खाकर अपने पलंग पर जाकर लेट गई। बगल के कमरे में नैना देर तक पढ़ाई किया करती थी। साथ वाले पलंग पर अपर्णा अपने बेटे पुलक के साथ खर्राटे भर रही थी।

सुवर्णा सोचने लगी कि इतने तनाव में भी अपर्णा दीदी को न मालूम नींद कैसे आ जाती है? उसे तो लगता जैसे कि नींद उसकी आँखों की कर्जदार है और आँखों को देख कर ही दूर से भाग जाती है। वह आशंकित हो उठी कि आज फिर से उसे नींद नहीं आएगी। दिमाग में घूमते ढेर सारे सवाल उसकी आत्मा का मंथन करेंगे। क्या कोई हल निकल पाएगा? क्या कभी वह उससे मिल पाएगी जो उसकी झील–सी ठहरी जिंदगी को दरिया बना अपने साथ बहा ले जाएगा?

कभी उसे लगता जैसे कि उसकी सारी अर्जित की गई संपत्ति व्यर्थ है। क्या वह सिर्फ पैसे कमा दूसरों की जरूरतों को पूरा करने के लिए ही बनी है? क्या उसकी जिंदगी उसके खुद के लिए कोई मायने नहीं रखती? क्या उसे अपनी उम्र की अन्य लड़कियों की तरह जीवन साथी की कामना करने का कोई हक नहीं है?

पिता ने तो अपने चारों ओर संवेदनहीनता की शून्यता व्याप्त कर रखी थी, जहाँ उन्हें अपनी बत्तीस–वर्षीया बेटी के मन की आवाजें सुनाई नहीं देती थीं।

माँ को मादा सिकाडा कीड़े की तरह कभी कुछ कह ही नहीं पायी। रात जैसे–जैसे बढ़ती जाती, उसकी सोच भी बेरोक–टोक उसी प्रकार भागने लगती जैसे देर रात में सिग्नल पर जलती–बुझती पीली बत्ती में कारें।

उसके पिता जब कभी अप्रत्यक्ष रूप से उसके ब्याह न होने का कारण उसके अतिसाधारण रंग–रूप को ठहराते तो सुवर्णा बिफर उठती– जी में आता कि वह उनसे कह उठे कि अपनी अकर्मण्यता को मेरे साधारण रंग–रूप का जामा न पहनाइए। हर लड़की का ब्याह होता है, बस जरूरत होती है किसी भी चीज को सकारात्मक ढंग से देखने की। क्या कभी ईमानदारी से अपने चेहरे को आईने में देखा है? अगर देखेंगे तो मेरे अति साधारण रंग–रूप का जवाब आपको मिल जाएगा। लेकिन बार–बार दोषी ठहराए जाने पर भी वह अपने पिता को जवाब न दे पाती थी। चुप रहने की आदत उसे अपनी माँ से विरासत में मिली थी।

बात भी कुछ ऐसी होती थी कि जो भी लड़के वाले उसे देखने आते, वे उसके बारे में कम और उसके सफल रूप से चल रहे पार्लर के बारे में ज्यादा पूछते। और फिर एक बार जो उसे देख कर जाते तो फिर महीनों तक कोई जवाब न देते। पिता अपने अभिमान की रक्षा करते हुए लड़के वालों से उनका जवाब पूछने की जहमत न उठाते थे और बड़े भैया आयुष को तो उन्होंने बेटे के अधिकारों से ही वंचित कर रखा था। छोटे भाई अर्पित को आज तक किसी भी बात का शऊर ही न हुआ। माँ की बड़ी किन्तु सूनी आँखों का भाव आज तक सुवर्णा के लिए एक पहेली बना हुआ था।

सुवर्णा को कभी लगता कि उसका ब्याह न होना उसके घर वालों के

लिए वरदान बन कर रह गया है। वह पिता की फटी आर्थिक चादर को सम्पन्नता की मखमली चादर से ढक देती। पिता कहने मात्र के लिए ही घर के खर्चों को उठाते थे, क्योंकि जब भी घर में कोई बड़ा खर्च आता, सुवर्णा आगे बढ़ खर्च किया करती। पिता के मकान को भी उसने कोठीनुमा बनवा दिया था जो पिता के धनाभाव के कारण वर्षों तक ठीक तरह से बन नहीं पाया था।

आखिर में सुवर्णा का दिमाग वहीं पर आकर रुक गया जहाँ उसे लगता जैसे उसे सैकड़ों शूल चुभ रहे हों— उसे याद आने लगा वह दिन, जब उसकी मंगनी अमोल नाम के लड़के के साथ तय हो गई थी। लड़के और उसके घर वालों ने उसे पसंद भी कर लिया था। लड़का कोचिंग क्लासेज चलाता था।

अब बरसों बाद सुवर्णा का दिल गाने लगा था। उसने ब्यूटीशियन के कोर्स में सीखे ढेर सारे गुणों को अपने ऊपर आजमाने शुरू कर दिए थे। वह ब्यूटी–पार्लर के खाली होने पर स्वयं को ब्राइडल मेकअप से सजा, आईने में स्वयं को निहारती। घर के माहौल से अब उसे कोई शिकायत न थी। माँ के हाथों की बनी विधवा भेषधारिणी सब्जियों में भी उसे अब नया रंग–रोगन तैरता नजर आता, खाने में रूचि बढ़ गयी थी। वह अपनी मंगनी की अंगूठी की ऐसे हिफाजत करती जैसे किसी लोक–कथा का कोई पात्र अपनी जान को किसी तोते में डाल उसकी हिफाजत किया करता।

समय के आकाश में जिंदगी किसी पानी लाने वाले बादल की तरह सरकती जा रही थी— निर्बाध। सहसा सुवर्णा को भनक लगी कि उसका होने वाला पति शादी–शुदा है। उसने अपनी पहली पत्नी को छोड़ रखा है और वह उससे सिर्फ पैसों के लिए शादी कर रहा है। सुवर्णा को गहरी चोट लगी— मन मोती के माले की तरह टूट कर बिखर गया।

रात में कब तक वह विचारों के झंझावात से जूझती रही, उसे पता नहीं लेकिन तकिए का गीला हिस्सा इस बात की गवाही दे रहा था कि कल रात में वह काफी देर तक रोती रही थी।

सुबह उठी तो उसे बिलकुल ताजगी नहीं महसूस हो रही थी। उसने किसी तरह से एक साधारण–सा सलवार सूट डाला और स्वयं को पार्लर जाने के लिए तैयार किया। पर आज उसे अपने टूटे और रंग उड़े मन की गाड़ी को समय की रफ्तार के साथ भगाने की हिम्मत नहीं हो रही थी।

जैसे ही वह चौके में पहुँची, माँ आज भी उसके बीमार मन का नब्ज न टटोल सकी। हाथ में सुवर्णा को लंच–बॉक्स पकड़ाते हुए कहा— "इंतजार करना, अर्पित को तुम्हें लाने के लिए भेजूँगी।" 'इंतजार' शब्द सुनते ही सुवर्णा को लगा जैसे कि उसका मन तरबूज की तरह जमीन पर गिर कर फट पड़ा हो।

सुवर्णा तेज स्वर में बोल पड़ी— "कोई जरूरत नहीं है मुझे लाने के लिए अर्पित को भेजने की। मैं कोई विकलांग नहीं जिसे व्हील–चेयर की जरूरत होती है। मैं एक साधारण इंसान हूँ जो अपनी जिन्दगी अपने भरोसे जी सकता है", इतनी बड़ी बात सुवर्णा ने अपनी बत्तीस–वर्षीय जिंदगी में अपनी माँ से पहली बार कही थी। उसकी माँ ने भी बचपन बीतने के बाद आज पहली बार उसकी आँखों में प्रत्यक्ष रूप से आँसू देखे थे। उसके अस्फुट शब्द आज घनघोर गर्जन कर गए थे। सुवर्णा की आवाज आज पहली बार घर की दहलीज को लांघ कर बाहर चली गई थी।

वह लगभग भागती हुई घर से बाहर निकल गई। उसके आँसू जो वर्षों से आँखों से गिरकर रुमाल की तहों में खो जाया करते थे सहसा निडर हो सड़क पर चलते लोगों को अपनी उपस्थिति का एहसास दिलाने लगे।

पार्लर पहुँच वह अपने केबिन में आकर हथेली पर गाल टिका ऑफिस चेयर पर बैठ गई। आज का दिन उसे भले ही वह सब कुछ न दिला सकता था, जो उसके जख्मों पर मरहम का काम करता। लेकिन आज का दिन उसके पार्लर में व्यवसाय के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण था। एक विदेशी कंपनी के उत्पादों की एजेंसी सुवर्णा को मिलने वाली थी, जिसमें काफी मुनाफा होने की संभावना थी। मन में किसी तरह की उमंग न रहते हुए भी उसने एजेंसी के लिए हामी भर दी।

यंत्रवत सुवर्णा कंपनी से आए सेल्स के लोगों के साथ सौंदर्य प्रसाधनों की विशेषताएँ सुन रही थी। सौंदर्य कंपनी का दावा था कि ये कुछ खास प्रकार के उत्पाद हर बेनूर चेहरे को नूर प्रदान करने की क्षमता रखते हैं। ये करिश्मा कर जाते हैं।

अपने क्षीण हाथों से सुवर्णा उन उत्पादों को लेकर सोचने लगी कि क्या ये उत्पाद उसके बेनूर चेहरे को भी नूर दे करिश्मा कर जाएँगे?

कविता

खूंटी पर टंगी कमीज

तेज नारायण राय
कोल्होड़िया, भैरोपुर, दुमका (झा.)
मोबाईल : 6207586995

यह जो घर के अंदर
खूंटी पर टंगी कमीज है
आसमानी रंग की
वो मेरी है
जिस खूंटी पर टंगी है मेरी कमीज
उसी खूंटी पर टंगा होता था कभी
पिताजी का कुर्ता
पिताजी अब नहीं रहे
न ही रहा उनका वो कुर्ता
उनकी चिता के साथ ही
धू–धूकर जलकर राख हो गया कब का
लेकिन वो खूंटी ठीक वहीं है
आज भी
जिस पर टंगी है पिताजी की आत्मा

यह बात घर में सिर्फ मैं जानता हूँ
जब–जब मेरी कमीज
हिलती है हवा में
तब तब हिलती है पिताजी की आत्मा भी
ऐसा लगता है जैसे
पिताजी कुछ कह रहे हों हमसे
दे रहे हों हिम्मत
कि वो हमारे साथ हैं
दूर रखकर भी पास हैं
यहाँ तक कि अदृश्य होकर भी
देख रहे हैं सब कुछ
उनकी आत्मा परमात्मा बनकर
हमारी रक्षा में मौजूद है
हमारे घर के आसपास

शायद यही वजह है कि
जब–जब हिलती है हवा में
खूंटी पर टंगी मेरी कमीज
तब–तब डोलती है घर में
पिताजी की परछाई
जो सिर्फ और सिर्फ
मुझे दिखाई देती है
बाकी घर वालों को तो दिखता है
सिर्फ खूंटी पर टंगी मेरी कमीज!

कहानी

प्रदूषित ध्वनि

मुख्तार अहमद
मो.–9350147760

"क्या सोच रही हो?"

"यही कि तेरे बिन अकेला हूँ, अब तो जिया न जाए।"

"तुम्हें हर वक्त मजाक सूझता है।"

"तुमने बात ही ऐसी की है पगली।"

"उनके पास शब्द नहीं होते केवल ध्वनियाँ होती हैं। विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ, अभिन्न अहसासों के लिए।"

"वैसे तो तुम सच कहते हो, पंछियों की आवाजें जिन्हें हम ध्वनि या साउंड कहते हैं, एकदम जुदा–जुदा सी हैं हजारों लाखों तरह की।"

"बिल्कुल प्रकृति, कुदरत की भाषा भी ध्वनियां ही हैं, कायनात के पास शब्द नहीं हैं।"

"फिर हमारे पास शब्द कहाँ से आए?"

"राम जी की कृपा से।" दोनों खिलखिलाते आगे बढ़ते रहे।

युवा जोड़ा अपने ही उल्लासों में गुम, जिन्दगी के खूबसूरत लम्हे गुजारने भरतपुर बर्ड सेंचुरी घूमता हुआ, अपने खूबसूरत पलों को सहेजता दुनिया की आपाधापी से दूर नितांत अकेले; स्वयं को स्वर्णिम अहसासों से सराबोर करते हुए आनन्दित हो रहा है कि एक जीप जिसमें दो पुलिस मैन एक रेंजर व एक ड्राइवर बैठे हुए थे, उनके पास आकर रुकी।

"यहाँ कहाँ घूम रहे हो तुम लोग?" इंस्पेक्टर ने अपनी कड़कती आवाज में पूछा।

"हम सेंचुरी घूमने आए हैं सर। विद परमिशन", उन्होंने कार्ड दिखाया।

"अच्छा–अच्छा... इंस्पेक्टर थोड़ी नरमाई दिखाता हुआ बोला, जल्दी से कॉटेज पहुँच जाओ बारिश आने वाली है।"

"जी सर।" उन्होंने सहमति से सिर हिलाते हुए कहा।

"और ये लेफ्ट वाली पगडंडी से जाओ सीधे कॉटेज पहुँचोगे।"

"जी, बेहतर सर!" और वो हाथ हिलाते हुए आगे बढ़ने लगे।

मन्द–मन्द समीर सरसराती जिस्म को बहुत सुकून देती है। बादलों के साथ पागलों की तरह एक–दूसरे से लिपट के भागना सुरमई–सी फिजा कितना रोमांच भर देती है। देह में प्रेम पगने लगता है और वो भी बगैर एक शब्द बोले सिर्फ ध्वनियों में ही संपूर्ण प्रेमता का प्रकटीकरण हो जाता है। प्रेम निःशब्द ही होता है। जब हम प्रेम में होते हैं तो केवल वनदक में ही क्रिया, प्रतिक्रिया व्यक्त हो जाती है और हम तृप्त भी हो जाते हैं। अर्थात् ध्वनि मूल है शब्द गौण।

अपनी ही बातों में मस्त जोड़ा अपनी ही मस्ती में अपने कॉटेज की ओर रवाना था।

पुलिस की जीप आगे जाकर रुक गई, जिसमें एक वन विभाग का रेंजर था, एक पुलिस सब इंस्पेक्टर, एक सिपाही और एक ड्राइवर।

"यार! लौंडिया तो बम्बाट दिखे है", सब इंस्पेक्टर खीसें निपोरता हुआ बोला।

"सही बोले साब जी।" पुलिस वाले ने हाँ में हाँ मिलाई, दोनों मूर्खों की तरह हँसने लगे।

"मतवाले मौसम ने भी उमंग जगा दी है और इस लौंडिया के रूप ने तो तन–बदन में आग–सी लगा दी है", उसने अंगड़ाई लेते हुए कहा।

प्रकृति का भी निराला खेल है, जिस खूबसूरती ने फूलों के दिलों में मोहब्बत जगाई है, वही मौसम शैतानों के शरीरों में वासना फैलाता है। शैतानी मानसिकता से ग्रस्त शरीर कुछ गलत–सही नहीं सोच पाता। जहाँ प्रकृति अपने मनमोहक सुरों में आलाप ले रही है वहीं ये दरिंदे वासना में बहक शंखनादि विलाप ले रहे हैं।

"हाँ! तो उस्ताद, लौंडिया के पीछे गाड़ी लगा।" इंस्पेक्टर ड्राइवर से बोला।

"साब! लौंडा भी उसके साथ है।"

"साले को काट के फेंक देंगे, जंगल है। जानवर तो मरते ही रहते हैं", उसने जोरदार ठहाका लगाया।

"गाड़ी मत मोड़। सीधी रख, चेक पोस्ट पर पहुँचना है", रेंजर ने ड्राइवर से कहा।

"अरे रेंजर साहब! छोड़िये भी चेक पोस्ट का रोना, आप भी मजे लेना।"

"मजे लेना मेरा काम नहीं है। इस इलाके का रेंजर हूँ मैं। पशु–पक्षियों की सुरक्षा के साथ–साथ यहाँ आने वाले पर्यटकों की हिफाजत करना भी मेरा कर्तव्य है। गाड़ी सीधे चेक पोस्ट ही जाएगी।" उसने दृढ़ता से कहा।

"रेंजर साहब! आप तो घणे आदर्शवादी लाग्गे हो?"

"आप जो भी समझें, आप की मर्जी।"

"आप बेफजूल में बात बढ़ा रहे हैं रेंजर बाबू। बात सिर्फ मजे लेण की है, तो यूँ करें कि लौंडे को नहीं मारते। अब तो खुश?"

"बात खुशी की नहीं, उनकी सुरक्षा की है।"

"अच्छा। कोंण देगा सुरक्सा उन्हें?" उसके चेहरे पे कुटिल–सी मुस्कान खेल गई।

"मैं दूँगा उन्हें सुरक्षा। यही मेरा काम है और आप का भी यही कर्तव्य है, जनता की सुरक्षा।"

"लो कर लो बात। अब यो हमें सिखाएगा हमें हमारी ड्यूटी?" ये कहकर इंस्पेक्टर ने अपनी गन रेंजर पर तान दी।

"साब जी! रहण दो, घणा खून खराब्बा हो जावेगा, जाण दो साब। कोई दूसरा इंतजाम करेंगे, आपकी ताईं।" पुलिस वाला हाथ जोड़ते हुए बोला।

"ना रे उस्ताद! अब चखना तो उसी छोकरी ने है।"

"ऐसा तो होगा नहीं। मेरे रहते, रेंजर गुर्राया।"

रेंजर छः फूटा जवान। बलिष्ठ शरीर, सीना तना गर्वीला कम उम्र नौजवान, डर उसे छूकर भी न निकला।

"ये तमंचा अपनी जेब में रख लो साहिब जी। खरहा मारने के काम आएगा।"

"रख लो साब जी! रेंजर ठीक बोले से।"

"ओये तू चुप कर। घणी बकवाद ना कर; अपनी औकात में रह!" इंस्पेक्टर धौंस दिखाते हुए बोला।

"इस छोकरे की तो जानवर पार्टी करेंगे।"

"आप अपने होश में नहीं हैं, साब जी! थोड़ी ठंड रखो।"

"तू परे हट बे।" सब इंस्पेक्टर, राक्षसपन पे उतर आया।

युवा जोड़ा दुनिया से बेखबर अपनी ही धुन में रमा बढ़ा जा रहा था कि, लड़का अचानक रुक कर बोला, "यार! कहीं हम गलत रास्ते पे तो नहीं?"

"उन पुलिस वालों ने तो यही रास्ता बताया था।"

"तुम्हें बहुत भरोसा है पुलिस वालों पर?" लड़के ने मुस्कुराते हुए कहा।

"कितनी शराफत से तो बात की थी, रास्ता भी सही बताया होगा?"

"रुको! जब हमने वापसी की थी तो हवा कानों से टकरा रही थी और अब सीधी नाक से टकरा रही है।"

"मतलब?"

"यही की बातों के चक्कर में रास्ता भटक गए हैं।"

"तो अब?"

"तो अब रात, बारिश में भीगते हुए बितानी होगी।"

"मजाक मत करो, अभी रात होने में काफी वक्त है।"

"मुझे लगा तुम एक्साइटमेंट में मेरे गाल चूम लोगी।"

"चूम तो होंठ भी लूंगी, पर पहले कॉटेज पहुँचें।"

"अरे! ये तो बुलेट फायर था, तुमने सुना?"

"लगता है शिकारी घुस आए हैं, संचुरी में।"

"जल्दी डिसाइड करो? मुझे घबराहट हो रही है।"

"वो भी चिंतित हो गया था बुलेट की आवाज सुनकर।"

"वो जो पगडंडी घूम गई है, उस पर चलते हैं।"

"जैसा तुम्हें सही लगे।"

"चलो", वो युवा जोड़ा उस पगडंडी की ओर मुड़ गया।

इंस्पेक्टर ने गोली चला दी।

गोली, रेंजर के कंधे में लगी लेकिन उसने दूसरा मौका नहीं दिया। सब इंस्पेक्टर की बाँह पकड़ कर मरोड़ा और फिर एक ही झटके में उसे नीचे जमीन पर पटक दिया।

रेंजर ने उसकी छाती पर पैर रख कर मसल दिया। खोखला शरीर तड़प उठा।

"हाँ भई उस्ताद! तुम भी जोर आजमा लो?" रेंजर ने हँसते हुए पुलिस वाले से कहा।

"ना सर जी। हमारी मति थोड़ी मारी गई है जो, आपसे पंगा लें।"

"सुन बे इंस्पेक्टर! तुझसे अच्छी गन मेरे पास है, और मुझे बुलेट का हिसाब भी नहीं देना पड़ता है। ये देख! ठोक दूँ तुझे अभी और तेरे इन चेले को भी", रेंजर ने गन उन दोनों की तरफ मोड़ दी।

दोनों रेंजर के पैरों में लिपट गए, "नहीं सर नहीं। गलती से गलती हो गई।"

"हमें माफ कर दो सर! आप तो रक्षक हैं, वो दोनों गिड़गिड़ाए।"

"तो चलो फिर। अपने साहब के हाथ–पैर बांधो, गाड़ी में लादो और चेक पोस्ट पहुँच कर सब सच बता दो।"

उसके कंधे से खून बह रहा था। बुलेट अब भी कंधे के अंदर ही थी।

"वो देखो वहाँ कॉटेज, हम पहुँच गए। तुमने सही रास्ता चुना।" इतना कहकर युवती उससे लिपट गई। हल्की–हल्की बारिश शुरू हो गई पर वे सुरक्षित थे।

"ये बुलेट की आवाज भी तो ध्वनि होती है?"

"हाँ! पर प्रदूषित", और फिर वे हाथों में हाथ डाले मुस्कुराते कॉटेज में दाखिल हो गए।

कविता

एक बार फिर से देखो

राधारमण मिश्र

एक बार फिर से देखो, क्या वही यह गुलिस्तां है
सारे जहां से अच्छा, तुमने जिसे कहा था
बुलबुल है खोई खोई, हर कली के लव सिले हैं
सूरत पर सिकन लेकर, कुछ फूल भी खिले हैं
गोदी में अब तो जिसके, नदियाँ सुबक रही हैं
चट्टानों पर जिनकी लहरें, सर को पटक रही हैं
नफ़रत के काले बादल, आसमां पर छा रहे हैं
सावन में भी अब तो देखो, शोले बरस रहे हैं

तमाशबीन बनकर, पर्वत खड़ा हुआ है
हमसाया आसमां का, शर्म से गड़ा हुआ है
मज़हब के नाम पर अब, इन्सान कट रहे हैं
अल्लाह ईश्वर देखो चौराहों पर बिक रहे हैं
कोयल की कूक में भी अब हूक है चमन का
कहीं उजड़ ना जाए, ये गुलिस्तां वतन का।

कहानी

राशन की चोरी

डॉ. संतोष सांडू घल्डे.
पहाड़सिंगपुरा, बीवी का मकबरा रोड,
छत्रपति संभाजीनगर (औरंगाबाद), महाराष्ट्र
मो.— 7020994770

एक बहुत बड़ा मैदान जिसमें एक विशाल पत्तरों का शेड लगा हुआ है। पू–पू, पम्–पम् की ध्वनि करते हुए कुछ ट्रक आ रहे हैं और जा रहे हैं कुछ लंबी कतार में खड़े हुए ट्रक हैं जो आरी–बारी से भीतर जा रहे हैं। ट्रक में एक के ऊपर एक लदी हुई बोरियां जिसमें तनिक भी रिक्त जगह नहीं है। जहाँ देखो वहाँ लोग ही लोग जो सूफ से गेहूँ को हवा में उड़ा रहे हैं। तो कुछ लोग बोरियों से गेहूँ जमीन पर उड़ेल रहे हैं तो कुछ लोग बोरियों में गेहूँ भर रहे हैं। कुछ लोग वजन काटे पर बोरियां तौल रहे हैं, तो कोई रसीद देखकर उस पर शाई का ठपका ठप्–ठप् लगाए जा रहा है। कुछ गेहूँ की बोरियाँ शेड के बाहर खुले बरामदे में रखी हुई हैं, जिसमें ताड़पत्री का एक बहुत बड़ा टुकड़ा झाक कर रखा हुआ है। असंख्य बोरियाँ धूप खा रही हैं। भारी बारिश हो जाए तो गेहूँ को कौन बचाए। एक पर एक रखी बोरियाँ मन को उत्साहित कर रही हैं। जिसमें असंख्य टन गेहूँ जहाँ चूहों की मौज है। बारिश के दिनों में गेहूँ बचाने के साधन नहीं, अनाज सड़ रहा है। किसी को कोई चिन्ता नहीं। यह स्थिति है सरकारी गोदामों की। सरकारी गोदामों में अनाज काफी दिन पड़ा रहने के कारण सड़ने लगा है। पहले कीड़े–मकोड़े गेहूँ को खाते हैं फिर वही गेहूँ राशन दूकानों में भर–भर कर भेजा जाता है। "वाह रे वाह! मेरी सरकार, सड़ा–गला अनाज खाने के लिए मजबूर यहाँ का गरीब नौजवान।"

"अरे! हरिया भाई "राशन के दुकान पर राशन आ चुका है। जल्दी जाकर ले आओ नहीं तो खत्म हो जाएगा?"

"जी! हाँ, प्रीतम भाई, थोड़ा घर का काम निपटा लूँ फिर चला जाऊँगा और इस बार राशन बोरी भरकर ले आऊँगा।"

"प्रीतम भाई! राशन के दुकान में क्या–क्या आया है?" हरिया ने पूछा।

"गेहूँ और चावल ही है सिर्फ," प्रीतम बोला।

"बस! गेहूँ और चावल?" हरिया ने कहा।

"हाँ, बस गेहूँ और चावल," प्रीतम भाई बोले।

"कितना गेहूँ और चावल ले आए हो, प्रीतम भाई।" हरिया ने जिज्ञासावश पूछा।

"देखो हरिया इस बार "बस! नौ किलो गेहूँ और छह किलो चावल मिला है।" प्रीतम ने कहा।

"अरे भाई! इतने से अनाज में यह माह कैसे कटेगा।" हरिया ने सिर हिलाते हुए प्रीतम से कहा।

"अब करें भी क्या हरिया भाई! मेरी और राशन दुकान के मालिक की बहस इसी बात को लेकर हुई, वह सुनने को तैयार ही नहीं है। वह कहता है कि हमें ऊपर से जितना राशन आएगा हम उतना ही आपको देंगे। आगे कुछ बोलने जाओ तो उसका ख्वाब देखने को मिल जाता है। तुम्हें तो पता ही है हरिया। फिर भी मैं कह गया साहब इतने कम अनाज में यह माह कैसे कटेगा? यह बात सुनते ही वह राशनवाला मुझपर बरसकर बोला कि राशन लेना है तो लो वरना चलते बनो। क्या आपके लिए हम हमारे घर में अनाज उगाएँ क्या? फिर मैं क्या कहता, चुपचाप राशन उठाया और ले आया।"

"किस हिसाब से उन्होंने यह राशन दिया है? मतलब आपके घर में सात लोग हैं, प्रति एक व्यक्ति के लिए कम–से–कम तीन या पाँच किलो गेहूँ मिलना चाहिए।" हरिया ने प्रीतम से कहा।

प्रीतम हाथ की उंगलियों पर गिनती शुरू करता है, तभी हरिया कहता है, "हम प्रति व्यक्ति सिर्फ तीन किलो गेहूँ का हिसाब भी लगाएँ तो कुल इक्कीस किलो गेहूँ होता है। इतना तो तुम्हें मिलना ही चाहिए था। यह तो गेहूँ का हिसाब रहा और चावल प्रति व्यक्ति को दो किलो के हिसाब से भी मिले तो सात गुणा दो किया तो चौदह किलो होता है। फिर तुम्हें गेहूँ और चावल दोनों को मिलाकर कुल पैंतीस किलो राशन मिलना चाहिए था। मगर तुम्हें तो केवल पंद्रह किलो में खुश कर दिया उस राशनवाले ने।"

"हाँ हरिया भाई, मैंने उस राशनवाले से बहुत बहस की मगर उसका कोई लाभ नहीं हुआ। वह कहता है कि जितने आधार प्रमाणपत्र राशन कार्ड से लिंक रहेंगे उतना ही राशन मिलता रहेगा। फिर चाहे राशन कार्ड पर कितने ही नाम क्यों न हों। यही सरकारी आदेश है। यह कहकर हाथ में इतना राशन थमा दिया।" सिर झुकाते हुए प्रीतम ने हरिया से कहा।

हरिया पूरी तरह से राशनवाले की तिकड़मबाजी चाल को समझ गया। उस पर तर्क देते हुए प्रीतम से बोलता है, "प्रीतम भाई, मुझे लगता है यह राशन दुकानवाला और खाद्यान्न पुरवठा (आपूर्तिकर्त्ता) अधिकारी की साठ–गांठ से राशन चुराने का नया हथकंडा आया है।"

इन दोनों की बातों को काफी देर से एक बूढ़ा इन्सान वहाँ रुककर सुन रहा था। उसके बाल मानो बरगद के पेड़ की बड़ी–बड़ी जटाएँ लग रही थीं। उसके दांत पके हुए आम के रंग की तरह पीले–पीले लग रहे थे। मुँह पर चढ़ी झुर्रियाँ साफ–साफ दिखाई दे रही थीं और उसमें फँसा हुआ मैल भी। हरिया और प्रीतम की नजर उस वृद्ध आदमी की ओर पड़ती है। तभी वह जोर–जोर से चिल्लाता हुआ कहता है, "अब अन्न संकट वाली बात चलेगी अखबार और सरकार के मंच से। चूहों की मौज है। व्यवस्था जिंदाबाद! जिंदाबाद!! जिंदाबाद!!!" हरिया और प्रीतम एकटक उस बूढ़े बाबा को ही निहारते रह गए।"

दोपहरी के साढ़े बारह बजे हरिया राशन दुकान पहुँचता है। राशन की दुकान ताले में बंद है। खाली थैलियां लिए मायूस होकर हरिया घर लौटता है। हरिया को चिंता सता रही है। इस महीने की गुजर कैसे होगी? कल राशन मिलेगा या नहीं? घर में अनाज का एक दाना भी नहीं है। इसी सोच–विचार में हरिया नीम के पेड़ के नीचे एक चबूतरे पर बैठा हुआ था। इसी बीच प्रीतम वहाँ आ जाता है।

"ओ हरिया भाई, राशन लाए हो क्या? क्यों मुँह सुखाए बैठे हो, हरिया भाई।"

हरिया भाई, मायूस बना चेहरा लेकर प्रीतम से कहता है, "राशन दुकान गया था मगर वहाँ ताला लगा हुआ है। तुम्हें तो पता ही है वह राशन दुकान का मालिक कल जाने पर भी मुझे राशन नहीं देगा और खूब बहाने बनाएगा।" हरिया बोलता रहा और प्रीतम सुनता रह गया। थोड़ी देर बाद दोनों भी खामोश बन बैठ जाते हैं।

वहाँ से गुजरता हुआ एक व्यक्ति जोर की आवाज लगाता हुआ कहता है। "क्यों भाई हरिया! कैसे हो?"

"प्रदीप साहब आप तनिक यहाँ आईये तो सही।" प्रीतम ने हाथ दिखाते हुए कहा।

"ठीक है भाई! आ रहा हूँ। थोड़ा सब्र भी रखो।"

थोड़ा पास आ जाने के बाद प्रदीप कहता है “क्या गुफ्तगू हो रही है, हमें भी तो बताओ।”

“क्यों भाई हरिया! सुबह तो काफी चुस्त लग रहे थे। अब यह सूरत क्यों उतार रखी है?” प्रदीप ने पूछा।

“क्या कहूँ साहब, मेरे हक का राशन मुझे मिलता नहीं है। अब बताओ चूल्हा कैसे जलेगा? कैसे भूख मिटेगी? हम इन्सान हैं या नहीं? देश का सारा अनाज चूहे खा रहे हैं, उन्हें तो खुली छूट है। यहाँ ट्रक भर–भर के अनाज आ रहा है। मगर पता नहीं ट्रक से अनाज उतरते ही कहाँ चला जाता है। हम कैसे जियें प्रदीप साहब, आप ही बताइए?” हरिया ने प्रदीप से अपनी चिन्ता प्रकट करते हुए कहा।

“कौन चलाता है, यहाँ का राशन दुकान।” प्रदीप ने पूछा।

“राजेंद्र नाम है उनका साहब!” प्रीतम ने बिना देरी किये बताया।

“साहब वह राजेंद्र राशन को अपनी जागीर समझता है और मन चाहे उसे बेच देता है, वो भी ऊँचे दामों में।” हरिया ने कहा।

एक–एक कर हरिया और प्रीतम प्रदीप को राजेंद्र की सारी हकीकत बयां करते हैं।

“दुनिया का सबसे लालची इन्सान यदि कोई है तो वह यह राजेंद्र है।” प्रीतम ने प्रदीप से कहा।

इन दोनों की बातों को सुनने के बाद प्रदीप कहता है, “कल मेरे साथ राशन की दुकान पर चलना, मैं देखना चाहता हूँ वह राशन देता है या नहीं।”

दूसरे दिन सुबह साढ़े ग्यारह का समय हो चला था। हरिया और प्रीतम प्रदीप का इंतजार नीम के पेड़ के नीचे कर रहे थे। दूर से प्रदीप को आते देख हरिया का चेहरा थोड़ा खिल उठा था। ‘अब राशन मिलेगा’ यह सोचकर हरिया की आस जग चुकी थी।

प्रदीप पास आते ही कहता है “चलो भाई! चलो!”

तीनों कुछ समय बाद राजेंद्र की राशन दुकान पर पहुँच जाते हैं। वहाँ राजेंद्र और कुछ लोग गप–शप लड़ा रहे हैं।

“राशन की माँग करो, हरिया।” प्रदीप ने कहा।

“राजेंद्र दादा, राशन दे दो इस माह का।” हरिया ने नरमाहट भरे स्वर में कहा।

बिना कुछ सोचे–समझे राजेंद्र हरिया पर बातों से बरसने लगा, “कब तक आप लोगों का राशन संभालते रहें हम, इतना ही काम बचा है क्या हमें। आप समय पर तो आते नहीं हो, अब जाओ। आपका राशन वापस भेज दिया गया है। अब आपको राशन नहीं मिलेगा। अब अगले माह आना।” कहकर टालता है।

“क्यों नहीं मिलेगा राशन? आज तो तीस तारीख है।” प्रीतम ने राजेंद्र से कहा।

“राजेंद्र भाई, “क्यों, राशन की लूट मचा रखी है आपने। इनके अनपढ़पन का लाभ आखिर कब तक उठाओगे।” प्रदीप ने राजेंद्र से कहा।

प्रीतम फिर बीच में ही बोल उठा “राशन आपके दुकान में माह की पाँच–छह तारीख को आ जाता है और आपकी राशन दुकान माह के आखिर में ही खुलती है। कब खुलती है कब बंद होती है पता ही नहीं चलता, किसी सरकारी नौकर भरती की तरह।”

“साहब, मुझे राशन दे दो... मैं आपसे हाथ जोड़कर विनती करता हूँ। मेरे दो छोटे–छोटे बच्चे हैं जो बड़ी आस लगाए बैठे हैं। दोनों एक–दूसरे को कह रहे हैं। बाबा! आज भात लायेंगे!” हरिया ने कहा।

प्रदीप की ओर देखकर प्रीतम कहता है, “जब कभी राशन मिलता है तब आधार प्रमाणपत्र लिंक की हिदायतें देकर कम राशन हाथ में थमा दिया जाता है। कभी–कभी तो वो भी नहीं मिलता।”

राजेंद्र का मुख गुस्से से आग–बबूला हो रहा था, वह हरिया और प्रीतम को घूरे जा रहा है। प्रदीप प्रीतम से राशन कार्ड लेता है और अपने मोबाइल में कुछ ढूँढने में व्यस्त हो जाता है। थोड़ी देर बाद उन्होंने प्रीतम को मिले अनाज का पूरा ब्यौरा निकालकर राजेंद्र के पास रख दिया। ‘जहाँ साफ–साफ लिखा था कि प्रीतम को इस माह में इक्कीस किलो गेहूँ, चौदह किलो चावल, दो किलो शक्कर, आठ किलो मक्का और चना दाल भी मिला है।’ प्रदीप अपना मोबाइल राजेंद्र के टेबल पर रखकर राजेंद्र को देखने की बार–बार गुजारिश करता है। मगर राजेंद्र मोबाइल को हाथ लगाए तब न।

प्रीतम अपने माथे पर हाथ लगाते हुए कहता है, “मुझे तो महज इस माह में गेहूँ नौ किलो और चावल छह किलो ही मिला है।”

“क्यों राजेंद्र साहब, बस करो यह लूट करना, क्यों लूटा जा रहा है अनाज? यह केवल अनाज ही नहीं है, गरीबों के लिए सब कुछ है। केवल प्रीतम का राशन लूट रहे हो या और का भी।” प्रदीप राजेंद्र से पूछता है।

राजेंद्र अपनी सफाई देते हुए कहता है, सुनो प्रदीप! राशन वितरण की जो प्रणाली बनायी गई है वह मात्र दिखावा है। हमें आदेश मिला है कि, जितने आधार प्रमाणपत्र राशन कार्ड से लिंक हैं उतना ही राशन देना है। फिर हम अधिक क्यों दें? राजेंद्र की बात को रोककर प्रदीप कहता है, “फिर यह ऑनलाईन ट्रान्जेक्शन का क्या मतलब है?” वहाँ राजेंद्र अपनी ही बात में फँसता जा रहा था।

तू–तू मैं–मैं करता हुआ राजेंद्र कहता है, “मुझे नहीं पता और इन फिजूल बातों के लिए मेरे पास कोई समय नहीं है।”

“आपके लिए यह बात फिजूल हो सकती है मगर यह चीजें गरीबों के लिए बहुत मायने रखती हैं।” प्रदीप ने कहा।

“ऑनलाईन सरकार का दिखावा है, जहाँ बढ़ा–चढ़ा कर राशन दिखाया जाता है जिससे विकास दिखाई दे। सरकार का काम दिखाई दे।” वहाँ कुर्सी पर बैठे एक व्यक्ति ने सीना चौड़ा करते हुए कहा।”

उसकी बात को बीच में ही रोकते हुए प्रदीप ने कहा, “इन गरीबों का अनाज इन सबकी मिलीभगत से कालाबाजारी में उतरता है क्या? मैं अंधा नहीं हूँ? किराना दुकानों में गरीबों का यह राशन बोरियाँ भर–भरकर जा रहा है, बेचने के लिए।” कुर्सी पर बैठा वह व्यक्ति एकटक होकर प्रदीप की ओर देखता ही रह जाता है। इधर राजेंद्र के चेहरे पर पसीने की धार लगी है। राजेंद्र बार–बार रूमाल से मुँह पोंछ रहा है। वह थोड़ा झल्लाकर प्रदीप से कहता है, “जाओ आपको जहाँ शिकायत करनी है करो, मैं डरने वाला नहीं हूँ, मैं अकेला चोर थोड़े ही हूँ। जो मूल में गरीब है उनके पास राशन कार्ड है क्या? अगर नहीं है तो क्यों नहीं है, बताओ? यहाँ हर परिवार के सदस्यों की वार्षिक आय को मिलाकर देखें तो ग्यारह हजार रुपये के ऊपर होगी, फिर भी उनके पास यह राशन कार्ड है, बताओ कैसे?”

प्रदीप हँसता हुआ कहता है, “जिनका राशन है उन्हें तो मिलना ही चाहिए राजेंद्र भाई, आप सच्चाई से भाग नहीं सकते। और हाँ आप ही तो हैं इसके पीछे, बड़े–बड़े लोगों के घर तक कुछ रुपयों में राशन कार्ड पहुँचाने वाले। आपको और उन्हें पता है। गरीब का राशन कार्ड निरस्त कर उसी राशन कार्ड के नंबर पर दूसरे के नाम गुंदवा दिए जाते हैं। गरीबों के नहीं अमीरों के। पता है तुम्हें वे कभी राशन लेने के लिए आयेंगे ही नहीं, मगर नियमित रूप से सरकार से राशन भर–भरकर आएगा उनके भी नाम का। सही कहा न मैंने।”

बड़े अचरज के साथ प्रीतम कहता है, “सब अनाज इनके ही हंडी में! वाह रे वाह व्यवस्था धन्य है तू, दिखावा कर नाच रही है। न जाने मेरा भी राशन कार्ड बंद हो जाए।”

अपने आपको फँसता देख राजेंद्र वहाँ से निकलने का बहाना ढूँढता है, "दुकान बंद कर मुझे बैठक के लिए जाना है। आप जरा जाइए! अभी राशन नहीं है, बाद में देखेंगे।" राजेंद्र ने तीनों की ओर इशारा करते हुए कहा।

राशन दुकान से निकलकर हरिया, प्रीतम और प्रदीप अपनी उसी जगह आकर खड़े हैं, जहाँ से वे राशन दुकान के लिए निकले थे।

"कल जाकर हम अधिकारी से राजेंद्र की शिकायत करेंगे।" प्रदीप ने कहा।

"शिकायत करने के बाद हमारी समस्या हल हो जाएगी क्या?" हरिया ने प्रदीप से पूछा।

"बिल्कुल, हमारा अधिकार है। कुछ–न–कुछ कदम तो हमें उठाने ही होंगे, हरिया।" प्रदीप ने कहा।

मन–ही–मन प्रीतम सोचने लग जाता है कि, "कहीं यह व्यवस्था की सांठ–गांठ मेरा राशन कार्ड ही निरस्त न कर दे। अपनी साख जमाने के लिए।"

"ठीक है प्रदीप साहब, हम बड़े साहब के पास जाकर राजेंद्र की शिकायत करेंगे।" हरिया ने कहा।

जब यह तीनों अपने–अपने घर को निकलने वाले ही थे तभी वह बूढ़ा व्यक्ति बड़बड़ाता हुआ फिर कह चला, "कितने भी चक्कर लगा लो। अधिकारियों से शिकायत कर लो। डंका मचाओ। कोई मतलब नहीं... मैं भी इन स्थितियों से गुजरा हूँ। शिकायतें कीं, मंत्री को शिकायत–पत्र तक भेजे, फिर भी हमारा अनाज हमारी आँखों के सामने कालाबाजारी में नीलाम होता रहा। अभी तक लोग जागे नहीं हैं, उन्हें चैन की नींद सोने दो। जो सोने का नाटक कर रहे हैं उन्हें जगाना बहुत कठिन है। कल उनकी भी बारी आएगी। यदि तुम कुछ करने जाओगे तो कल का अखबार देख लेना।' अन्न संकट है भाई, अन्न संकट। जोर–शोर से अखबारों में छपा मिलेगा। देखा नहीं एक छोटी–सी नन्ही बच्ची भात–भात करके भूख की असहनीय पीड़ा से मर गई। किसी के मुँह से उफ तक न निकला। किसी को रहम नहीं आया, वह भात–भात करती रही और राशन दुकानदार आधार– आधार करता रहा।"

"व्यवस्था जिंदाबाद! जिंदाबाद!! जिंदाबाद!!!"

हरिया मायूस होकर शांत बैठ जाता है। हरिया को अपने अधिकार का राशन मिलता नहीं है। वह बहुत क्रोधित होकर चीख पड़ता है, "लूटो सालों लूटो, गरीबों के अनाज को लूटो। देश में घुसे चूहों, खाओ हमारा अनाज, करो कालाबाजारी और बनाओ बड़े–बड़े महल। मेरे छोटे–छोटे बच्चों की हाय लगेगी, हाय!" प्रदीप हरिया को समझाता रहा मगर हरिया की आंखों से आँसू ठहरने का नाम नहीं ले रहे थे।

कविताएँ

मनोरंजन सहाय सक्सेना
ए–25, इन्द्रपुरी,
लालकोठी, टौंक रोड, जयपुर
मो.– 9461093077

क्या है जीवन
घर के अंदर आंगन सूना
बाहर है हर मंजर सूना
सूनी सड़कें, सूनी गलियां
मन का हर इक कोना सूना
स्मृतियां दस्तक देती थीं
खोल, किबड़िया मन मंदिर की
ऊब गयी हैं वह भी शायद
दस्तक देती नहीं कोई भी
कहते हैं विद्वान समय है
स्वाध्याय और आत्मचिंतन का
पढ़े किताबें कितनी कितना
लेखा देखें इस जीवन का
सात दशक लम्बे जीवन की
यादें भी मधुसिक्त नहीं हैं
अपनों के ही बेगानेपन से
अति कटु हैं, और तिक्त बनी हैं
मिला नहीं अपनापन जिनको
जीवन में एक पल एक छिन को
सदा रहा अभिशप्त, तरसता
अपनेपन के एक मृदु छिन को
मिली नहीं आँचल की छाया
जिसके तले सिर्फ कुछ पल को
कर लेते विश्राम घड़ी भर
विस्मृत कर बीते कटु कल को
मिला न कांधा एक कभी
जिस पर सिर रखकर कुछ पल को
हम भी जार–जार रो लेते
हल्का कर लेते इस दिल को
इसीलिए अब यह एकाकी
सूनापन जीवनसाथी है
थकती सांसें बरबस ढोती
यह जर्जर जीवनथाती हैं
आज प्रश्न है यक्ष किसलिए
स्पन्दित शव सम जिन्दा है
शिथिल हो रही हैं कर्मेन्द्रिय
ज्ञानेन्द्रियाँ भी शर्मिंदा हैं
जर्जर तन और खंडित मन से
बोझ ढो रहे हैं जीवन का
शेष नहीं है कोई चाहत
नहीं है हल एक जटिल प्रश्न का
यही है जीवन, क्या है जीवन
इस जीवन के आगे क्या है?
मोक्ष सत्य या पुनर्जन्म है
कोई नहीं बता पाया है।

नीतू कुमारी
पुत्री–मनीराम,
मु.+पो.–कसेरू, झुन्झुनू(राज.),
मो.– 7903100010

बेदर्दी पीड़ा
उन्मादों की थी बेदर्दी पीड़ा
जैसे हो मनु की इड़ा
सन्नाटा था जीवन में कहीं
आ गया सफर फिर वहीं
पहाड़ों की ऊँची चोटियों में
फँस गया चित्त लताओं सा
बिलखती सी आवाज सुनी
करता जिसे हर कोई अनसुनी
लगी वो मुझे कुछ अपनी सी
चंचलता के घेरे में फिर
दिखाई देने लगी अचानक
एक किरण उम्मीद की मुझे
वो आवाज घुटन थी एक
साँसों में उलझे कुछ स्वर
फूट पड़े मुख विवर से अब
गर्मी के सागर से निकलकर
दिखने लगी अब फिर मुझे
एक किरण उम्मीद की।

कहानी

ए चाँद आसमाँ के

डॉ. पूरन सिंह
बाबा फरीदपुरी,
वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली
मो.– 9868846388

माँ बताती थी कि हम दो ही पैदा हुए थे उसकी कोख से – मैं और श्याम भैया। मेरे जन्म के दो महीने बाद ही पिताजी भगवान के घर चले गए। माँ ने ही पाला–पोसा था हम दोनों को।घर में संपन्नता थी।पैसा–धन दौलत की कमी नहीं थी लेकिन पिता के बिना कोई दुलार करने वाला न था।माँ तो ममता का अथाह सागर थी लेकिन पिता... पिता की कमी आज तक महसूस होती है मुझे।

माँ बताती थी कि मेरे पिता बहुत अच्छी नौकरी करते थे। इसके अलावा, मेरे दादा–परदादा के वह अकेले वारिस थे इसलिए जमीन–जायदाद से भी संपन्न थे।श्याम भैया को जमीन–जायदाद से ज्यादा लगाव नहीं था।वे अपने बल पर बहुत बड़ा आदमी बनना चाहते थे।जहाँ वे पढ़–लिखकर बहुत बड़ा आदमी बनना चाहते थे वहीं माँ उनकी शादी कर देने के लिए उनके पीछे पड़ी थी, "श्याम की शादी हो जाती तो घर संभालने वाली आ जाती और घर–घर लगने लगता।"

"आपकी बातें ठीक हैं माँ लेकिन अभी मैं पढ़ना चाहता हूँ और पढ़कर अच्छी नौकरी करना चाहता हूँ।" श्याम भैया का तर्क हुआ करता था।

"नौकरी इतनी जरूरी नहीं है श्याम, तेरे बाप–दादा का बहुत कुछ है।तुम चाहो तो दोनों भाई जीवन भर उससे खा सकते हो।" माँ अपना तर्क दिया करती थी।

और आखिर एक दिन माँ जीत गई थी।

माँ के मायके के दूर के कोई उसके भैया लगते थे, उनकी बेटी को ब्याह कर घर ले आई थी माँ। भैया ने माँ के आगे सिर झुका दिया था। भाभी भैया से आठ साल छोटी थी और मैं भाभी की उम्र का। भाभी दिन–दुनिया के बारे में ज्यादा नहीं जानती थी। भाभी का सबसे बड़ा दोस्त मैं बन गया था। भाभी मेरे साथ हँसती और गाती थी।

हम दोनों को खुश देखकर भैया बहुत खुश होते थे तो माँ अंदर–ही–अंदर सुलगती रहती थी।माँ को भय था कि भाभी कहीं मुझे मोहित न कर ले।

"हर समय की हिलिर–हिलिर ज्यादा अच्छी नहीं होती है।बहू हो तो बहू की तरह रहो, हाँ नांहि तो।" माँ गाहे–बगाहे डाँट देती थी भाभी को।

भाभी पर डाँट का ज्यादा असर नहीं होता था। जैसे ही माँ घर से बाहर निकलती, भाभी और हम खुश हो जाते थे।फिर तो न जाने कितने खेल शुरू हो जाते थे।हम इकिया–दुकिया खेलते, भाभी एक टांग से कूदती और मैं भी कूदता।हम दोनों के बीच हार–जीत होती, मैं अक्सर ही जीतता था।भाभी कभी नहीं जीतती थी। शायद भाभी के नसीब में हारना ही लिखा था। हम छिपा–छिपाई खेलते, भाभी घर में छिप जाती तो मैं उन्हें आसानी से ढूँढ लेता और मैं छिपता तो भाभी मुझे बहुत मुश्किल से ढूँढ पाती थी।

एक दिन क्या हुआ– भाभी छिपने के लिए भैया के कमरे में चली गई। प्रायः हम भैया के कमरे में नहीं जाते थे क्योंकि भैया पढ़ते रहते थे और उनकी पढ़ाई का कोई हर्ज न हो इसलिए हम पूरा ध्यान रखते थे। भाभी जैसे ही भैया के कमरे में गई भैया ने भाभी को पकड़ लिया था और... और...। मैंने पूरा घर छान मारा। भाभी नहीं मिली थी। मैं हिम्मत करके भैया के कमरे में गया तो भाभी वहाँ भी नहीं थी। फिर देखा तो भैया भी नहीं। मैं जब कमरे से निकलने को हुआ तो भाभी ने कहीं से 'कू' की।मैंने 'कू' की आवाज की दिशा में देखा तो भाभी–भैया के बाहुपाश में समाई हुई थी।मैं सहम गया था और बाहर भाग आया था।दो दिन तक भाभी से नहीं बोला था मैं।भाभी और भैया मुझे दोनों दिनों तक मनाते रहे थे तब जाकर मैं माना था।

अथाह प्यार, अपनत्व और असीम श्रद्धा थी हम तीनों में लेकिन माँ को मुझे लेकर भय था।एक असुरक्षा ने उन्हें घेर लिया था।

भैया, भाभी को बहुत प्यार करते थे। भैया बहुत समझदार और पढ़ने में होशियार भी थे।

"मोहन मैं जब कलक्टर बन जाऊँगा तब मैं तुझे अपने ही पास रखूँगा।माँ अभी नाराज रहती है, जब तू बड़ा हो जाएगा तब तेरी भी बहू ला देंगे तब तो माँ की असुरक्षा की भावना खत्म हो जाएगी।तब तुम और तुम्हारी भाभी खूब छिपा–छिपाई खेला करना...।" भैया के स्नेह के आगे मैं झुक–झुक जाता था।

भैया रात में छः–छः, आठ–आठ घण्टे पढ़ते थे।एक ही धुन थी आई.ए.एस. बनेंगे।रात–रात भर की पढ़ाई ने उन्हें कहीं का नहीं छोड़ा।एक दिन पता चला कि भैया को खाँसी हुई और खाँसी में जिन्दा ब्लड आया था। भैया को डाक्टर के पास ले जाया गया।पता चला भैया को टी.बी. हो गई है और ऐसी टी.बी. नहीं– बड़ी भयानक– जिसके होते ही मृत्यु की टिकट हाथ में थमा दी जाती है।मैंने सुना तो मैं रो पड़ा था।

"मैं तुम्हें खोना नहीं चाहता भैया।" मैंने उनके हाथ पकड़कर जब कहा था तो भैया कुछ नहीं बोले थे सिर्फ आँखों की कोरों से दो मोती लुढ़कते हुए न जाने कहाँ बिखर गए थे।

पैसे को पानी की तरह बहाया गया था।मैं कुछ–कुछ समझदार हो गया था। मैंने भैया के इलाज में जमीन–आसमान एक कर दिया। सारी जायदाद, धन–दौलत लगा दी थी लेकिन भैया ठीक होने का नाम ही नहीं ले रहे थे।हमारे पास अब सिर्फ घर और सात बीघा का एक खेत बचा था।

एक दिन माँ ने कहा भी था, "मोहन तेरे भाई को तो अब कोई भी बचा नहीं सकता।तू तो कम–से–कम अपना ध्यान रख बेटा।"

"माँ भैया बच गए तो ऐसी दस जायदाद बना लूँगा। बस मेरे भैया बच जाएँ।" माँ मेरी भावनाओं के आगे चुप हो गई थी।

भाभी को बहुत समझ अब भी नहीं आई थी। वे हमेशा हँसती रहती– कूदती रहती थी।जबकि मैं जानता था कि भैया अब मेहमान हैं।कभी भी बुलावा आ सकता है।

पिछले दिनों से जब से भैया बीमार हुए थे मैंने एक बात पर ध्यान दिया था कि भैया अब भाभी को बहुत ज्यादा प्यार करने लगे थे– शायद अपनी पढ़ाई के कारण भाभी को प्यार नहीं कर पाए थे उसकी भरपाई कर रहे थे।भाभी मस्त रहती थी।अब भैया के हाथ–पाँव नहीं चलते थे।सुन्दरता की साक्षात् मूरत मेरे भैया चारपाई में मिल गए थे।वे मुझे पास बुलाते और कहा करते, "मोहन! वही वाला गाना सुनाओ न।"

"कौन–सा वाला भैया।"

"वही चाँद वाला।"

मैं सुनाने लगता था।

"ए चाँद आसमाँ के दम भर जमीं पे आजा

भूला हुआ है राही तू रास्ता दिखा जा...।"

मैं गाते–गाते रोने लगता था लेकिन भैया रोते नहीं थे। वह छत की तरफ देखते रहते थे– मानो उनका चाँद आसमां से उतरकर नीचे आ जाएगा। वे शायद चाँद के बहाने भाभी को बुलाने की बात किया करते थे। वैसे भी उनका चाँद तो भाभी ही थी।

मैं उन्हें डाक्टर के पास ले जाना चाहता था लेकिन उनसे उठा नहीं गया था तो मैं डाक्टर को ही घर ले आया था। उस दिन माँ घर में नहीं थी। भाभी और मैंने ही भैया को दिखाया था। 'बस, ओनली वन वीक', कहकर डाक्टर साहब चलने लगे थे। उस दिन... उस दिन मैंने देखा था कि भाभी अचानक बड़ी हो गयी थी।

"तुम्हारे भैया... मोहन तुम्हारे भैया हम सभी को...।" मेरे कंधे पर सिर रखकर भाभी बुक्का फाड़कर रोई थी तो कब चुप हुई थी, कोई नहीं जानता। मैं उन्हें चुप कराते–कराते स्वयं भी रोने लगा था कि माँ आ गई थी। माँ क्या समझी क्या नहीं... हम दोनों ने कोई चिंता नहीं की थी माँ की।

जहाँ हम और भाभी, भैया की सेवा में जमीन–आसमान एक कर रहे थे वहीं, माँ न जाने कहाँ से खबर ले आई थी कि भाभी के लिए सात सुहागिनें न्यौती गई हैं, कल उन्हें बुलाया जाएगा और भाभी उनकी पूजा करेंगी और उनसे अपने सुहाग अर्थात् भैया के लिए भीख मांगेंगी। वे सभी माँ गौरा की पूजा करके भैया को प्रसाद के रूप में भाभी को देंगी और भैया बच जाएँगे।

भैया बहुत बुद्धिमान थे। ढोंग–ढकोसले में कतई विश्वास नहीं रखते थे फिर भी जब मृत्यु सामने खड़ी हो तो आदमी उससे बचने का जो रास्ता दिखाई दे, उसे चुन लेता है। भाभी को उन्होंने ऐसा करने के लिए कह दिया था।

अगले दिन पूजा थी। भाभी ने अच्छी साड़ी पहनी थी। अब गहने पहनने थे। पूरे शृंगार के गहने– बिल्कुल नई दुल्हन की तरह– गहने माँ की अलमारी में थे। माँ ने गहने नहीं दिए थे, "अपने मायके से लाई है सो पहन, तेरा क्या है, आज लिए फिर कभी वापिस ही न करे। ... मेरे बेटे का क्या... बचा न बचा... तू तो गहने लेकर निकल जाएगी अपनी माँ के यहाँ... हाँ नांहि तो... हम गहने नहीं देंगे।

लाख कोशिशों के बाद भी माँ ने गहने नहीं दिए थे। मैं भी जिद पर अड़ गया था, "आज मैं अलमारी का ताला तोड़ दूँगा, भाभी को गहने दे दो अम्मा।"

"तू पागल हो गया है... तेरे लिए ही तो संभाल के रखना चाहती हूँ पगले... तेरे भैया का क्या... ये उठाए लंहगा चली जाएगी। तू समझने की कोशिश कर... हाँ नांहि तो...।" माँ ने मुझे समझाया था। मैं नहीं समझा था लेकिन माँ के आगे हार गया था। कहा तो भैया ने भी था, "दे दो अम्मा... गहने... शांति को एक बार... सिर्फ एक बार उसे दुल्हन की तरह सजा–संवरा देखना चाहता हूँ।" माँ ने भैया की बात को हवा में उड़ा दिया था। भाभी अधूरी दुल्हन ही बनी रही थी।

सात सुहागिनों में से एक–दो ऐसी भी थी जो चूकना नहीं चाहती थीं, "ए दइया... मैके से एक भी गहना नांहि लाई... शांति।" मैंने उन्हें घूरा था तो वे चुप हो गई थीं।

माँ गौरा की पूजा हुई थी। सातों सुहागिनों ने भाभी की झोली भैया से भर दी थी। भाभी अधूरी दुल्हन बनी भैया के चरणों में सिर रखे न जाने कितनी देर तक रोती रही थीं। सुहागिनें चली गई थीं।

और माँ गौरा की पूजा के ठीक अगले दिन... हाँ अगले दिन ही तो... मेरे भैया... मेरे भैया।

भैया चले गए थे हमेशा–हमेशा के लिए। अल्हण, मदमस्त हथिनी–सी घूमने वाली भाभी को उस दिन मैंने देखा था। उनके रोने से धरती का भी सीना फटा जा रहा था। मैं कभी भी नहीं जान पाया था कि भाभी भैया को इतना चाहती थी। भाभी को मैंने संभालने की कोशिश की थी। माँ ने रोक दिया था मुझे।

भैया के चले जाने पर वही घर जो स्वर्ग–सा लगता था... अब काट खाने को दौड़ता था। भाभी अब चहकती नहीं थी। शांत–चुप मानो तूफान आकर चला गया हो और अपने पीछे बर्बादी और सिर्फ बर्बादी छोड़ गया हो।

भैया की मृत्यु के ठीक पंद्रहवें दिन माँ ने फरमान जारी कर दिया था, "बहू परसों तेरे पिताजी आएँगे उनके साथ अपने मायके चली जाना...।"

मैंने माँ से कहा भी था, "माँ भाभी तो इस घर की बहू है उसे इस तरह मत भेजो।"

"तो किस तरह भेजूँ।" फिर मेरे कान में कहने लगी थी, "तेरे भैया को टी.बी. थी इसे टी.बी. होना पक्का है... यहाँ रहेगी तो तुझे और मुझे भी खतरा है। इसका जाना ही अच्छा है।"

उस दिन मुझे माँ पर बहुत गुस्सा आया था। मैंने माँ से बोलना बंद कर दिया था।

भाभी चली गई थी अपने पिता के पास। मैं उन्हें देखता रहा था। अपने पिता के साथ जाते–जाते उन्होंने आखिरी बार मुझे देखा था और... रोई थी या नहीं... मैं नहीं जानता। बस, उसके बाद तो वह चल नहीं रही थीं भाग रही थीं मानो कोई उनका पीछा कर रहा हो।

भैया की मृत्यु की पहली होली के पश्चात् माँ ने मेरी शादी की बात शुरू कर दी थी। मैंने शादी के लिए मना कर दिया था। माँ गुस्सा थी और मैं जिद पर।

एक दिन माँ सुबह घूमने गई थी। हमारा सात बीघा खेत था वहाँ से लौटकर आ रही थी और अपने साथ कुतिया का पिल्ला भी ले आई थी, "लौट रही थी खेत से... ये...ये... मेरे पैरों को चूमने लगा था... साड़ी खींच रहा था... बिल्कुल ऐसे ही... हाँ... हाँ... बिल्कुल ऐसे ही... श्याम छोटे में मेरी साड़ी खींचा करता था... इसे ले आई हूँ... मुझे तो ऐसा लगता है जैसे इसमें मेरे श्याम की आत्मा समा गई हो।" और माँ उस कुतिया के पिल्ले को श्याम–श्याम पुकारे जा रही थी।

मुझे लगा था कि किसी ने मुझे जलती हुई आग में झोंक दिया हो, "... और जिसमें श्याम भैया की आत्मा बसती थी... उसे तो एक महीने भी घर में नहीं रहने दिया... उसका क्या... वाह अम्मा वाह... अपने बेटे की आत्मा खोजी भी तो किसमें... कुतिया के इस पिल्ले में।"

"तू चुप कर... हाँ नांहि तो।" माँ ने मुझे डाँट दिया था।

मैं बहुत खिसियाया हुआ था। माँ जैसे ही घर से बाहर गई, मैंने उस कुतिया के पिल्ले को बोरी में बंद किया और दूर एक तालाब में फेंक आया था। कुतिया का वह पिल्ला लौटकर फिर कभी नहीं आया था।

भाभी का असीम और निश्छल प्यार... भैया की यादें साथ लिए खूब मेहनत करता रहा था मैं। भैया की तरह बुद्धिमान तो नहीं था, फिर भी उनका

कुछ असर तो रहा ही था कि शिक्षा अधिकारी बन गया था। स्कूलों का निरीक्षण करना आदि मेरे काम थे। बहुत बड़ा स्टाफ था। शान–शौकत थी... लेकिन न जाने क्यों एक कांटा–सा चुभता रहता था।

उस दिन एक स्कूल का निरीक्षण करने पहुँच गया था। स्कूल के कर्मचारी, अध्यापक, प्रिंसिपल और बच्चे मेरे स्वागत में हाथ बाँधे खड़े थे। निरीक्षण के पश्चात्, सांस्कृतिक कार्यक्रम था। सरस्वती वंदना के पश्चात्, एनाउंस हुआ था, "अब आपके सामने कक्षा सात का विद्यार्थी रमेश एक गीत प्रस्तुत करेगा।" बहुत सुन्दर और मासूम–सा एक किशोर माइक पर आया था और गाने लगा था।

"ए चाँद आसमां के दम भर जमीं पे...।"

उसने अभी गाना शुरू ही किया था कि मैं चीख पड़ा था, "भैया...।"

गीत बंद करवा दिया गया था। सब लोग परेशान थे। प्रिंसिपल सन्न रह गया था "...यह क्या हो गया। कहीं रिपोर्ट खराब न लिख दें साहब...।" सुन्दर और मासूम–सा किशोर सकपका गया था। मेरे आँसू थे कि थम ही नहीं रहे थे फिर भी मैं बोला था, "बच्चे को पूरा गाने दो।"

"ए चाँद आसमां के दम भर जमीं पे आजा
भूला हुआ है राही, तू रास्ता दिखा जा...।"

जब तक बच्चा गाना गाता रहा मैं सिसकता रहा था। फिर मैं उठा और प्रिंसिपल रूम में चला आया था। प्रिंसिपल भी मेरे साथ–साथ सहमा–सहमा–सा चला आया था।

"साहब, शांति का बेटा है... बहुत अच्छी और नेक दिल महिला है शांति... हमारे यहाँ काम करती है।" फिर प्रिंसिपल ने अपने एक अध्यापक से कहकर शांति को बुलवा लिया था।

श्वेत साड़ी में लिपटी ममता, स्नेह और प्यार की साक्षात् उस देवी को देखकर मेरे होंठ कब बजने लगे थे कोई नहीं जान पाया था, "भाभी।"

और भाभी, वह तो मुझे अपलक निहारे चली जा रही थी।

कविताएँ

अंजना वर्मा
बृजबिहारी लेन, ब्रह्मपुरा, मुजफ्फरपुर

कोई चुरा रहा है

कोई चुरा रहा है चुपके–चुपके
हमारा समय
रोटी की तरह खाता है हमारा वक्त
सूती कपड़े की तरह
तंग हो गये हैं हमारे दिन–रात
हमारा वजूद समा नहीं रहा है उनमें
गरीब की चादर बन गया है वक्त
सिर ढँको तो पाँव नंगे
पाँव ढँको तो सिर
ये हाथ कहाँ दिखाई देते हैं
जो नचा रहे हैं हमें?
हम कठपुतलियाँ हैं बेशक
क्योंकि नाच रहे हैं
पर काठ के नहीं बने हम
कि जितना भी नचाओ
हम थके नहीं
हाँफे नहीं
हम जीवित हैं
साँसें चल रही हैं हमारी
हमारे हाथ–पैर भी चल रहे हैं
दिल और दिमाग भी
पर सब चल रहे हैं किसी और के इशारे पर
लगातार
हम बँधुआ मजदूर बन गये हैं
बाजार के गुलाम
बाजार सिर्फ अपना विस्तार चाहता है
विस्तार... विस्तार... विस्तार
उसके लिए दुनिया में और कुछ नहीं
कोई नहीं
किसी का वजूद नहीं
सब बेज़ान–बेक़ार

ठहरो जरा

ज़रा रुको
कहाँ गायब हो गये
वे माटी के खिलौने
अब कहाँ दिखते हैं
कुम्हार के अनगढ़ हाथों से रचे गये
वे हाथी–घोड़े
पनिहारिन और सिपाही
मिट्टी के आम, केले और खरबूज
झूला झूलते कान्हा, राधा संग
बछड़े को दूध पिलाती उजली गाय
और अकुशल हाथों से निर्मित
हिंसक नहीं
मासूम दिखता शेर
अपने पेट में पैसा डलवाने के लिए
मुँह खोले गुल्लक
जो एक दिन अपना तन देकर
टुकड़े–टुकड़े में टूटकर
हमारी हथेलियों को
सिक्कों से भर देता था
अब
न जाने कहाँ गायब हो गया
अब कोई झूला झूलेगा कहाँ
न सावन समय पर आता है
न कदम्ब के पेड़ हैं
कदम्ब क्या
सारे पेड़ ही गायब होते चले जा रहे हैं
धेनुएँ कहाँ हैं
जो हैं वे भूख से दम तोड़ रही हैं
ये मिट्टी के खिलौने
क्या गायब हुए हमारे खेलों से
कि मिट्टी ही दूर हो गई हमसे
अब आ गये बाज़ार में
प्लास्टिक के चिकने–चमकते खिलौने
और मनमोहक शो पीस
अब पैरों को भी टटोलनी पड़ती है धरती
कि पैरों के नीचे प्लास्टिक है
धातु है या है कुछ और
कट रहे पेड़ और जंगल रोज़
हर दिन तोड़े जा रहे पर्वत
जीवित झीलें की जा रही हैं दफ़न
आकाश छूती इमारतें खड़ी करने के लिए
रुको यहीं
अभी भी बहुत कुछ है
जिसे तुम बचा सकते हो
हम छोड़ जायें एक हरी धरती
अपने बच्चों
और उनके बच्चों के लिए।

कहानी

जलन

शंकर प्रसाद मालाकार
ग्रा.पोस्ट—पाटम, जिला—मुँगेर (बिहार)
मोबाइल—9852149781

पूरे रामपुरा गाँव में ब्राह्मण और कायस्थों का अनुपात 80:20 का था। कुछेक परिवार दूसरी जाति से आते थे तो उसकी भी गिनती 20 में ही आती थी। वहाँ खास बात ये थी कि आपस में लोग मिल्लत के व्यवहार से एक प्राण दो देह जैसे थे। और, गोनू पांडे व शंकर सिन्हा पड़ोसी होने के नाते उस गाँव में एक चर्चित मिसाल थे। दोनों परिवारों में परस्पर खूब छनती थी। लेकिन, आर्थिक स्थिति के मुताबिक दोनों परिवारों में कई असमानताएँ भी थीं, जिससे खास कर पांडे जी यदा–कदा मन–ही–मन सिन्हा जी के मुकाबले अपनी ऊँचाई–निचाई नापा करते थे। पांडे जी पूजा–पाठ वाले और सिन्हा बाबू कचहरी के बाबू के साथ–साथ चर्चित साहित्यकार भी थे। उनकी भलमनसाहत व विद्वता केवल साहित्य–जगत में ही नहीं, बल्कि पूरे इलाके और बिरादरी में भी कस्तूरी की खुशबू की तरह फैली हुई थी। फलतः सिन्हा बाबू की ऊँचाई कभी–कभी इन्हें खटक जाती जोकि अनवरत बनी रहने के कारण तनाव का रूप ले लेती। और यही तनाव जब नित्य की रूटीन बन जाती है तो इससे 'जलन' नामक जानलेवा जहरीला कीड़ा दो रूपों में पैदा होता है। एक—प्रतिशोधात्मक, जोकि बहिर्मुखी होता है। दूसरे—रोगात्मक, जोकि अन्तर्मुखी होता है। ये सारे प्रभाव कर्ता की प्र ति पर निर्भर करते हैं। दुर्भाग्य से पांडे जी और उनके बेटे भी अपनी प्रकृति के अनुरूप प्रतिशोधात्मक रूप से इस कीड़े की गिरफ्त में आ चुके थे। पांडे जी की एक बेटी गौरी व दो बेटे और सिन्हा बाबू की मात्रा एक बिटिया ममता थी, जोकि गौरी की ही हमउम्र थी। छोरे थे तो बिलकुल निठल्ले, बदमिजाज और असंयमित। पवित्रा पुरोहित कुल में जन्म लेने का उनका कोई तुक ही नहीं था। अतएव बेटों पर निर्भरता छोड़ जीते जी पांडे जी बेटी के हाथ पीले कर गंगा नहा लेना चाहते थे, जबकि ममता आगे की पढ़ाई हेतु शादी से इंकार करती रही थी। जब भी कोई लड़के वाले पांडे जी के घर आते तो खुदगर्जी से सिन्हा जी का घर उनका अपना घर हो जाता। क्या चाय, क्या चीनी, क्या दूध, यहाँ तक कि लड़की दिखाई हेतु भी उन्हें ममता का सलवार–सूट भी सहज उपलब्ध हो जाता। काम निकालने हेतु ठकुरसुहाती खूब आती थी उन्हें। उस समय पांडे–परिवार के लब्ज पर बस सिन्हा जी, सीमा भाभी व ममता बिटिया के ही नाम होते। स्वागत–सत्कार व खानपान में भी सिन्हा जी की महती भागीदारी रहती। जब पांडे जी की बेटी की बारात आई थी तो वे कहीं छिपकर आँसू बहा रहे थे कि उधारी अधिक हो जाने के कारण किसी ने फिर उधारी नहीं दी और सिन्हा जी की उधारी डबल ट्रिपल तो थी ही, उसपर उनका एहसान भी भारी था सो, पुनः माँगने की हिम्मत नहीं जुटा पाए थे। इसी उहापोह में बारातियों के स्वागत–सत्कार का सरंजाम भी नहीं हो पाया था। सिन्हा जी ने जब सुना तो तत्काल मोर्चा संभाल लिया था और गौरी की विदाई तक मनसा वाचा कर्मणा डटे रहे थे। किसी की मदद करने में बड़ा आनन्द आता था उन्हें। जब विदाई के वक्त किसी बात पर पांडे जी के समधी जी रूठ गए थे तो सिन्हा जी ने उनके पाँव पकड़ मना लिया था उन्हें जबकि पांडे जी उनकी हठधर्मिता के आगे हार चुके थे। तब भर्रा कर बोले थे पांडे जी—"गौरी भी आप ही की बेटी थी सिन्हा बाबू, ममता की बड़ी बहन"—और साश्रु हो झपट कर लिपट गए थे सिन्हा जी से। यानी पड़ोसी–धर्म के निर्वाह में अपना कलेजा निकाल कर रख दिया करते थे सिन्हा जी।

और आज—दोनों परिवारों के बीच छत्तीस का आँकड़ा है। पांडे जी और उनके दोनों बेटे इनकी जान के दुश्मन बने हैं। जब मौका मिला, सिन्हा बाबू की छिछालेदार करने से नहीं चुकते थे सब। कारण कुछ नहीं, एकमात्रा जलन थी। सिन्हा बाबू की दौलत, शोहरत पांडे परिवार पचा ही नहीं पा रहा था। खासकर तब, जबकि सिन्हा बाबू की कोई रचना अखबार या किसी मैगजीन में छपती और चारों ओर उनकी प्रशंसा होती। हिकारत से पांडे जी के बेटे कहते फिरते—"क्या लिखना, लोगों को उल्लू बनाते हैं और मजे लूटते हैं। उनके जैसा ज्ञान और पैसा तो चुटकी में अरजते हैं हम।"

इससे भी जलन शान्त नहीं होती तो गालियाँ व मारपीट का न्यौता भी दे डालते। स्वभावतः सिन्हा बाबू समय की मार समझ सब झेलते चले जाते। क्या करते? इन्सानियत, नेकनामी व अकेलापन इनकी कमजोरी बन गए थे। चाहते तो कुछ भी करा सकते थे। लेकिन पड़ोसी–धर्म ने इन्हें मिट्टी के माधो बनाकर रख दिया था। इससे पांडे परिवार की हेकड़ी और भी बढ़ गई थी। गाँव के शोहदों, गुंडों, मवालियों के बीच पांडे जी और उनके बेटों का उठना–बैठना होता था। एक–दो बार चोरी–चमारी, लूटपाट व हत्या कांड में जेलयात्रा भी कर चुके थे। कभी–कभी सिन्हा जी सोचा करते—"क्या चाहता है मुझसे पांडे परिवार?—अन्त में यही निष्कर्ष पर पहुँचते कि शायद अकेला जान तंग कर भगाने पर तुले हों, ताकि दस कट्ठे का भूखण्ड मय मकान कब्जाए जा सकें। और वे मुस्कुरा भी लेते कि प्रजातंत्रा के कानूनी राज में ये कैसा मूर्ख है जो ऐसा सोच लेता है?

एक बार सिन्हा बाबू ने ममता बिटिया का रिश्ता दूर शहर के किसी मुंसफ लड़के से तय कर दिया था और लड़के वाले इनकी गैर मौजूदगी में ही इनके घर पधारे थे। दोनों माँ–बेटी ने यथासंभव सत्कार कर सबों को खुशी–खुशी विदा किया था। पांडे जी बिना बुलाए लड़के वालों के साथ हो लिए और न जाने उन सबों को कैसी पट्टी पढ़ाई कि वह रिश्ता बेवजह टूट गया। सुनकर सिन्हा बाबू व्यथित हुए। किन्तु क्या करते? प्रतिष्ठा और पड़ोसी–धर्म गले में हड्डी बनकर फँसे थे। ग्लानि में ममता ने भी शादी न करने की ठान ली।

पिछले साल की बात है। बगलगीर भोलू पांडे को चोरी–छिपे आम–कटहल तोड़ने पर बगीचे के मालिक के गुर्गों ने इतना मारा कि उसे छः माह अस्पताल में रहना पड़ा। दुर्भाग्यवश भोलू गोनू पांडे का ही भतीजा था। सो, जब पुलिस केस हुआ और पुलिस भोलू से पूछताछ करने गई तो गोनू पांडे ने भोलू पर पुलिस डायरी में अपराधी के रूप में कथित बगीचे के मालिक की जगह सिन्हा बाबू का नाम दे डालने का भरपूर दबाव बनाया। वो तो भोलू था जोकि नेकनीयती का परिचय दे ऐसा नहीं किया और सही आक्रमणकारियों को सजा दिलवाई। गोनू पांडे यहाँ भी चुके और दाँत काट कर खून निकाल लिए—हिस्स। लेकिन कहा है, शैतान कभी नहीं सोता। सो, एक दिन पांडे जी के बेटों ने गाँव के दादा धर्मा गुर्जर को बगैर नाम बताए सिन्हा बाबू के मर्डर की सुपारी दे डाली। किन्तु धर्मा गुर्जर निकला सिन्हा बाबू का चेला। बचपन में धर्मा ने उन्हीं से पढ़ाई की थी। सो, जब धर्मा ने शिकार की पहचान की तो सन्न रह गया और आग–बबूला हो पांडे जी के बेटों को सरेआम चाँटा जड़ते हुए हिदायत दी कि भविष्य में वह गुरुजीद्धसिन्हा बाबूऋ को तंग न करे। निदानतः दाम भी गया और काम भी न हुआ। चाँटा खाया सो अलग। यानी उल्टे बाँस बरेली को। सिन्हा बाबू चूँकि आध्यात्मिक भी थे, सो वह कुछ अपने इष्ट पर छोड़ निश्चिन्त हो जाया करते। आखिर कर भी क्या सकते थे? तब तक ममता बिटिया ग्रेजुएशन कर लॉ कर कचहरी में प्रैक्टिस करने लगी थी। जब भी पांडे के बेटे 55 के सिन्हा बाबू को अपनी 30–35 की धौंस दिखाते, ममता बिटिया कानूनी धमकी दे डालती। तब पांडे परिवार दाँत निपोड़कर उसकी दुहाई देने लगता।

जलन तो जलन थी। बगैर खाक किए कहाँ मानने वाली थी? कालान्तर में बिटिया ममता न्यायिक सेवा की परीक्षा पास कर खुद मुंसफ बन चुकी थी और सिन्हा बाबू रिटायर्ड होकर घर बैठ चुके थे। कहा है, भैंसा एक ही फसल को तब तक चरता है, जब तक कि वह खतम न हो जाती या फिर खुद डंडे खा चोटिल नहीं हो जाता। जलन का कीड़ा पांडे परिवार के जेहन में फिर कुलबुलाया। पांडे परिवार की अतिक्रमण–नीति से तंग सिन्हा जी ने गली में घेरा दे उससे कोई सरोकार न रखने को अपना सीमांकन पक्का कर लेना चाहा। हालाँकि यह सीमांकन ग्राम पंचायत में प्रधान जी के सामने किया गया था, फिर भी पांडे परिवार ने तंग करने के ख्याल से बाधा डाल दी और उलटे फैसले के विरुद्ध जबरन गली में दो हाथ निकल खुद तड़ी खोद ली। तब तक पांडे परिवार की सिन्हा बाबू के प्रति दुष्टता पूरे समाज में जाहिर हो चुकी थी। इससे ग्राम प्रधान और समाज क सुधी लोग बिफर पड़े। सिन्हा जी का दबंग चेला धर्मा गुर्जर ने जब सुना तो अपने गुर्गों के साथ आकर पांडे जी और उनके दोनों बेटों की तगड़ी क्लास ली–"साला, चेतावनी के बाद भी तूने धृष्टता दिखाई? ग्राम प्रधान और समाज के इन्सान तेरी जूती हैं क्या? किस्मत के साँढ़ हो जो देवता सरीखे इन्सान के पड़ोसी हो वर्ना कब का तेरा थोबड़ा अदर्शनीय हो गया रहता। याद है, जब उत्तरी टोला में मुँहमारी करते तुम पकड़े गए थे तो युवकों ने पहली बार तुम्हें पकड़कर सजा देने के ख्याल से मेरे पास लाया था। अपने बचाव में तूने किसका नाम लिया था?... गुरुजी के ही नाम पर चेतावनी देकर छोड़ा था मैंने। आखिर यह अन्तर्मुखी अकेला इन्सान तेरा क्या बिगाड़ रहा जो इसके पीछे सत्तू बाँध कर पड़े हो? शर्म करो। यही इन्सान थे जिन्होंने तेरी बेटी की शादी में अपनी लँगोट भी बेच डाली थी और तेरी इज्जत बचाने हेतु अपनी पगड़ी भी तेरे समधी के पैरों पर रख दी थी। सब पता है मुझे। तब कहाँ गया था तेरा पोथी–पत्रा? तेरी रामनामी चादर और जप–माला–छापा–तिलक? भगवान का ठेकेदार बनते हो और यजमानों को ठगते फिरते हो? सुनते हैं, अभी भी अनैतिक काम कर गुरुजी को नीचा दिखाने की जी तोड़ कोशिश कर रहे हो? छिः, घिन आती है तेरी करतूत सुनकर। आईने में थोबड़ा देखा है अपना? कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली। बहुत हुआ। एहसान फरामोश, अब तू इसी लायक है"— और पांडे जी के बेटों को धर्मा के गुर्गों ने उसी खंदक में पटकनी दे दी। पांडे परिवार की चिल्लाहट पर तरस खा सिन्हा बाबू व ग्राम प्रधान ने उसे एक आखिरी मौका और देने हेतु धर्मा को रोक दिया। जलन की आग में झुलसा काला नाग मुँह छिपा अपने दर्द सहलाता बिल में घुस गया। कुछ महीनों तक समाज में शान्ति छायी रही। वर्षों बीत गए। इस बीच सिन्हा जी की ख्याति साहित्य–जगत में चतुर्दिक खूब फैली। दिनानुदिन पत्रों–पेपरों में इनकी ढेर सारी रचनाएँ छपीं। सर्वत्रा जयजयकार हुआ।

और एक दिन सचमुच में सिन्हा बाबू का कत्ल हो गया। हत्यारा चाहे जो हो, लेकिन गोनू पांडे बेटों समेत सन्दिग्ध तो थे ही। अतएव हवालात की हवा खानी लाजिमी थी। तीनों बाप–बेटों को जेल जाना पड़ा और कत्ल की तफ्शीश शुरू हो गई। जब शुरू हुई तो अदालत तो अदालत है–लम्बी खिंच गई। पूजा–पाठ से होने वाली थोड़ी बहुत आमदनी भी बन्द हो जाने के कारण इधर गोनू पांडे का छः जनों का परिवार भूख की ज्वाला में दिन–रात जलने लगा। घर के बिकने लायक सामान बिक गए। छोटा–सा भूखण्ड भी दबंगों की भेंट चढ़ गया। इस तरह जैसे–तैसे छः माह निकल गए। किन्तु पेट की यह समस्या एक–दो माह की थोड़े ही थी? हार कर पांडे परिवार ने ममता बिटिया के क्वार्टर पर जा भूख हड़ताल कर दी और नारा दिया— "न्याय दो या खाना दो। हमारे मरद निर्दोष हैं।"— और पंडाइन ने पुराने रिश्ते का वास्ता दे ममता बिटिया के पांव पकड़ लिए। पिता के दिए सुसंस्कार से लवरेज ममता की प्रतिमूर्ति ममता बिटिया ने न्यायिक मदद में असमर्थता जताते हुए सबों को भरण–पोषण हेतु अपने पास रख लिया। विधवा माँ सीमा के प्रतिरोध पर बिटिया ने समझाया— "माँ, बाबा और भैया लोगों ने पापा का कत्ल किया या नहीं, यह तय करना पुलिस और अदालत का विषय है। और जब तक उनका अपराध सिद्ध नहीं होता, हम कतई उन्हें अपराधी नहीं कहेंगे। वे तो शक के दायरे में बंद हैं। किन्तु परिवार के इन सदस्यों–मासूमों का क्या दोष? हमें इनकी मदद करनी चाहिए, जहाँ तक बन पड़े। भगवान ने सिर्फ पापा को छीना। बदले में क्या कुछ नहीं दिया है हमें? पद, शोहरत, पैसा, बंगला, गाड़ी, नौकर–चाकर। और क्या चाहिए, माँ?... काकी सपरिवार यहीं रहेंगी और वह भी मेरे संक्षिप्त परिवार का हिस्सा बनकर। हाँ, जब जो फैसला होगा, तब उसके अनुरूप सोचेंगे।"

मुंसफ मजिस्ट्रेट बिटिया के तार्किक सुझाव से विधवा माँ सीमा सहमत हो गई। लोगों ने जाना तो हैरत में पड़ गए कि पीड़ित के यहाँ आरोपी के परिवार अतिथि बनकर रहें, ऐसा पहली बार देखा।

जब सिन्हा बाबू–मर्डर केस का फैसला आया तो नेपथ्य की कहानी बेहद चौंकाने वाली थी। तहकीकात में पांडे जी व उनके दोनों बेटे निर्दोष निकले और हत्यारे स्व. सिन्हा बाबू के साहित्यकार व दबंग साथी श्री गुप्ता जी के गुर्गे निकले। श्री गुप्ता जी ने अखिल भारतीय कथा–मंच द्वारा संचालित कहानी–प्रतियोगिता के तहत स्व. सिन्हा बाबू लिखित कहानी 'जलन' चोरी छिपे अपने नाम जमा करा दी थी, जोकि चयन में प्रथम आ गई थी। पूरे पचास हजार रुपए का पुरस्कार पा श्री गुप्ता जी फूले नहीं समाए थे। जब सिन्हा बाबू को इस चोरी का भान हुआ था तो वे तिलमिलाए थे और श्री गुप्ता जी को काफी जलील किया था। इतना ही नहीं, प्रतियोगिता के कथित मंच ने भी सिन्हा बाबू द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को आधार बनाकर कानूनी तौर पर उनसे पुरस्कार की राशि वापस ले ली थी। श्री गुप्ता जी दबंग किस्म के व्यक्ति थे ही और गुंडे पालते थे, सो यह सब जलालत उन्हें बर्दाश्त नहीं हुई और सिन्हा बाबू की हत्या करा दी। सम्पूर्ण साहित्य–जगत के साथ अदालत ने भी इस हत्याकांड की भर्त्सना की और श्री गुप्ता जी को उनके गुर्गों समेत आजन्म कारावास की सजा सुनाई। जब पांडे जी बेटों समेत रिहा हुए और ममता बिटिया की दूरदर्शिता व दरियादिली की बातें सुनी तो सपाट बिटिया के चरणों पर अपनी रामनामी चादर डाल गिर गए— "बेटी, जहाँ गौरी स्व. सिन्हा बाबू की बेटी साबित हुई, वहीं तुम मेरी बेटी साबित हुई। शायद भगवान ने भूलवश दोनों बेटियों को एक–दूसरे के घर जन्म दे दिया है। मुझे माफ कर दो बेटी।"

पश्चाताप से जलन की आग बुझकर राख हो बिटिया की स्नेह–वर्षा में गंगा–यमुना की तरह बह गई। बिटिया ममता ने अपने पैर हटा पांडे जी से सिर्फ इतना कहा–"चाचा, बड़ों से पैर छुवाना भारी पाप कहा गया है शास्त्रों में। और वह भी ब्राह्मण देवता से? देवासुर संग्राम में देवता हरदम हारे। परन्तु अमरता ने देवताओं का ही वरण किया। क्यों? जिन्दगी बड़ी अनमोल मिली है चाचा। दुबारा नहीं मिलनी। इसे सम्हाल कर चलिए। कविवर तुलसी दास जी ने अपने ग्रन्थ "रामचरितमानस" में स्पष्ट लिख दिया है— "निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करैं विरोध? फिर विरोध किसका? और किसके लिए? धरती और उसके सामान न कभी आपके होंगे, न कभी स्व. पापा के थे। वे चले गए और किसी दिन आप भी चले जाएँगे— अकेले, खाली हाथ। फिर काहे की मारामारी? काहे की जलन? अब तो स्व. पापा की भी जिम्मेदारी आपको ही निभानी चाहिए। गार्जियनशिप की छत तो अब आप ही को बनानी है..." कहते–कहते भर्रा गई बिटिया और रोते हुए पांडे जी से लिपट गई।

पांडे जी भी आपा खो बैठे और बिटिया को उठा, भाभी सीमा के पैर पकड़ कसम खाई— "आज से मैं और मेरा परिवार आपके चरणों के दास रहेंगे, भाभी"... और बेटे सहित पश्चाताप के आँसू रो पड़े।

कहानी

दूसरी औरत

श्यामल बिहारी महतो
बोकारो, झारखंड
मोबाइल–6204131994

समय का चक्र जैसे फिर से घूमा था। चेहरे बदल गए थे। मगर चेहरे के अन्दर से झांकती हुई आँखें वही थीं। उनसे बाहर लपलपाती हुई चिंगारियों और घुन लग चुकी व्यवस्था के प्रति उनका अनुराग भी उतना ही स्पष्ट था। पीपल का वो पेड़ भी वही था, जिसके नीचे आज से बीस साल पहले भी एक पंचायत लगी थी और आज भी एक पंचायत लगी है और उसमें बैठे लोग उसी तरह जाति के समीकरण, और समाज के ऊँच–नीच को समझने–समझाने की चिंता में एकत्रा हुए हैं। हाँ, कुछ नहीं बदला है तो वो है मुखिया नन्दलाल जी की न्यायप्रियता। आस–पास के सभी गाँवों में उनके प्रति लोगों में सम्मान था। उनकी लाठी और उनकी कर्तव्यपरायणता पर लोगों को आज भी पूर्ण विश्वास था। झुर्रियों से ढके होने के बावजूद उनका चेहरा तटस्थ–निर्लिप्त और निःसंग लगता था। उनके सामने अभियुक्त की जगह पर पचीस साल का नवयुवक कमलेश खड़ा था। संयोग है कि आज से बीस–पचीस साल पहले की पंचायत में कभी कहीं पर, इसका बाप झुमरू महतो भी अभियुक्त होकर खड़ा था। कमलेश दूर से बिल्कुल झुमरू–सा दिखाई पड़ता था। इस बात पर मुखिया नन्दलाल तो एकबारगी चौंक पड़े थे। उन्हें विश्वास नहीं हो पा रहा था कि वे कमलेश से नहीं, बल्कि झुमरू से मुखातिब हैं।

मुझे आज भी उस दिन की याद है, जब ठीक इसी जगह पर झुमरू मुखिया के सामने खड़ा था— अपने होने वाले बच्चे और अपनी दूसरी पत्नी की सुरक्षा का सवाल लेकर। एक ओर सारा गाँव खड़ा था, तो दूसरी ओर झुमरू और करमी और उनका प्रेम! करमी अर्थात् कमलेश की माँ जो झुमरू की दूसरी पत्नी थी।

यह आज से बीस–पचीस साल पहले की बात है। तब कमलेश का कहीं पता नहीं था। उसका जन्म नहीं हुआ था। उसकी माँ करमी एक कोलियरी में मजदूर थी, उसका मलकटा साथी झुमरू जो विवाहित था, पर वह उसकी माँ पर आसक्त था। अब यह पता नहीं कि झुमरू की नजर उसकी माँ के हाथ में सप्ताह के आखिरी दिन अर्थात् शनिवार को मिलने वाली कमाई–रुपयों पर थी या उसके शरीर पर, हो सकता है उसे सचमुच करमी से प्रेम रहा हो। मैं यह भी नहीं कह सकता कि वह क्या था, जिसके चलते उसकी माँ झुमरू के निकट होती चली गई थी— संभव है वह प्रेम के अलावा सामाजिक सुरक्षा भी चाहती हो। उस दिन करमी ने झुमरू से पूछा था, "क्या सचमुच तुम मुझसे शादी करोगे— एक मोदीन से? क्या तुम्हारी पत्नी मुझे कबूल करेगी?"

झुमरू ने अपने स्वर में दृढ़ता लाते हुए कहा था, "करमी, तुम्हें साथ रखने वाला तो मैं हूँ। वो कौन होती है, मेरे फैसले पर हाँ या न कहने वाली? माना, वह मेरी पहली पत्नी है, परन्तु उसे हम खिलाते हैं, वो हमें नहीं। तुम जहाँ चाहो, कोर्ट या मंदिर में, मैं तुमसे शादी करने को तैयार हूँ।"

उन दिनों पत्नी शांति देवी की हर बात झुमरू को बुरी लगती। करमी की देह–रस में डूबी झुमरू की आँखें शांति देवी की तरफ से कुछ ऐसे फिरीं कि उसे अब शांति देवी में बुराई के सिवाय अच्छाई नजर ही नहीं आती थी। कुल मिलाकर झुमरू का हृदय शांति देवी की तरफ से दिन–ब–दिन फटता जा रहा था। कभी उसे लगता कि पत्नी उस पर अपनी हुकूमत चलाना चाहती है। वह उफन पड़ता, "तुम क्या जानो, दीन–दुनिया की बात। हम साथ–साथ खटते हैं, उसी से लोग हमसे जलते हैं। पर बोलने वालों से कभी तुम यह नहीं पूछती हो कि हम नहीं खटेंगे तो, हमारा घर–परिवार कैसे चलेगा, हमारा पेट कौन भरेगा?" इस पर शांति देवी चुप लगा जाती और पति को मुलुर–मुलुर देखने लगती थी।

इधर समय के साथ–साथ करमी और झुमरू का सम्बन्ध प्रगाढ़ होता जा रहा था। तभी एक दिन नशे की हालत में करमी ने झुमरू से कहा कि वह दो माह पेट से हो गयी है। सुनकर पहले तो झुमरू ने कहा कि बच्चा गिरा दो, हमें अभी मौज–मस्ती करनी चाहिए। परन्तु करमी ने ऐसा करने से साफ मना कर दिया— इंकार कर दिया, "नहीं, हम ऐसा नहीं करेंगे, यह हमारे प्यार की पहली निशानी है।" लेकिन झुमरू सहमत नहीं था। वह थोड़ा वक्त चाहता था। वह नहीं चाहता था कि शादी के पहले बच्चा हो जाए।

उस दिन काम से घर पहुँचा तो काफी रात हो चुकी थी। शांति देवी बाहर खड़ी उसका इंतजार कर रही थी। देखते ही बोली, "कभी तो समय पर घर आ जाओ। रात को आने से कलमुँहा कहना लोग छोड़ नहीं देंगे।" पत्नी का उलाहना झुमरू को पसंद नहीं आया— खल गया। पर अपनी नाराजगी को उसने व्यक्त नहीं होने दिया। बिगड़ने से और बिगड़ेगी, उसने सोचा। आज पहली बार उसने पत्नी के सामने खुद को कमजोर महसूस किया था। वैसे भी वह आजकल हमेशा समझौते की मुद्रा में दिखता। सामने चाहे शांति देवी खड़ी हो या फिर करमी। सो अपनी बात में नरमी लाते हुए कहा था, "आज खदान में एक घटना घट गई, मुंशी बाघा सिंह सोमरी तुरीन को लेकर कहीं भाग गया...!"

शांति देवी ने इस पर कुछ नहीं बोला तो उसने आगे कहा, "अब उनसे जन्मे बच्चे भी राजपूत कहे जाएँगे–कहलाएँगे...।" इस पर भी शांति देवी खामोश बनी रही। हर दिन की शिकायत का पुलिंदा उसी वक्त खुलता था। लेकिन शांति आज शांत थी, जाने क्यों? चाँद का टुकड़ा आकाश पर लटका था, और तारे झुंड में नजर आ रहे थे, जिसे देखते हुए आँगन की खटिया पर लेटे शांति देवी ने कहा, "और अब बारी तुम्हारी है।" स्वर में व्यंग्य का पुट शामिल था। पर झुमरू ने उस पर ध्यान न देकर कहा, "अगर ऐसा करूँ तो बुराई क्या है? घर में 'डबल' पैसे आने लगेंगे, सालों से सेठ के यहाँ बंधक पड़ा बहियार–खेत छुड़ा लेंगे, घर में अनाज बढ़ जाएगा।" झुमरू का स्वर मीठा हो आया था। उसे बोलने का सूत्रा जो मिल गया था, "और तुम रानी बन कर घर में राज करोगी। वह तुम्हारी चाकरी करेगी। पैसा लाकर हम तुम्हारे हाथ में धरेंगे सो अलग...।"

झुमरू हर हालत में पत्नी को मना लेना चाहता था। पर शांति देवी भी त्रिया चरित्रा में झुमरू से बीस थी। हाथ नचाकर बोली, "हाँ, हाँ, काहे नहीं कहोगे, अभी तो वह आई भी नहीं है तो यह हाल है हमारा, घर आ जाएगी तो तुम हमें पूछोगे भी नहीं...।"

ऐन वक्त झुमरू की चाल पट पड़ जाती और वह शुतुरमुर्ग बन जाता था।

उधर अपने बढ़ते पेट पर उठ रही लोगों की निगाहों से करमी बेहद परेशान थी। वह झुमरू से एक ही बात कहती, "कुछ करो, वरना मैं जहर खा लूँगी... ।"

झुमरू भी काफी गंभीर था।

और उस दिन खनखना उठी थी करमी के हाथ में काँच की चूड़ियाँ, और

चूड़ियों की झनकार से चौंक उठी थी पूरी बस्ती। गाँव में बात फैलते देर नहीं लगी, "झुमरू रजरप्पा मंदिर से करमी को ब्याह कर ले आया है...।"
"करमी के बाप–भाई खफा तो थे ही, सुना तो जात–भाई वाले भी उत्तेजित हो उठे थे। बाप कुछ कहने आया तो उसने बाप से साफ बोल दिया, "हमने अपनी मर्जी से शादी की है, कोई जोर–जबरदस्ती से नहीं...।"
दूर खड़ा भाई चिल्ला उठा, "स्याला झुमरूवा ने हमारी बहन को बहका दिया है, हम भी चुप नहीं बैठेंगे...।"
मौजूदा समय में चुप रहना ही झुमरू ने बेहतर समझा था।
"हम मुखिया के पास जाएँगे।" बाप गाजो बोला और उठ कर चला गया था।
झुमरू करमी को लेकर घर की ओर चला, तब तक शांति देवी को इसकी भनक लग चुकी थी। जल्दी–जल्दी उसने संझा–बत्ती दिया और घर के बाहर खड़ी हो गई और गाँव की हवा का रूख भांपने लगी।
झुमरू की बूढ़ी माँ आँगन में खटिया पर बैठी साग टूंग– निकाल रही थी। तभी करमी को साथ लिए झुमरू ने आँगन में कदम रखा। सख्त चेहरा और चढ़ी हुई आँखें देखकर शांति देवी पहले ही दरवाजे से हट चुकी थी।
"हम दोनों ने शादी कर ली है और अब यह हमारे साथ यहीं रहेगी।" पता नहीं यह बात झुमरू ने किससे कही थी। बेटे के स्वर की गरमी बूढ़ी माँ ने भी महसूस की, पर उसने तत्काल कुछ न कह कर दूर खड़ी शांति देवी की ओर इस भाव से देखा कि यह तुम्हारा मामला है, निपटो या चिपटो। सास के इशारे से शांति देवी को बल मिला, वह हाथ नचा कर बोली, "अरे, कुछ तो लाज–शरम किया होता, आज तक ढंग का एक घर न छार सका है, एक ही घर में सूअरों जैसा रहते हो– सूतते हो, अब इसे कहाँ रखोगे, कहाँ लेकर सूतोगे– मेरे ऊपर...?"
झुमरू का पूरा शरीर जल उठा। लगा शांति देवी को थूर कर रख देगा। आगे बढ़ा भी, पर करमी सतर्क थी। इशारे से रोक दिया उसने झुमरू को, "ठीक नहीं होगा...।"
फिर भी झुमरू के मुँह से गरम भाप–सा निकला, "ज्यादा भचर–भचर मत करो, वरना रोने के सिवाय कोई काम नहीं रहेगा...।" फिर उसने करमी को इशारा किया कि आगे बढ़ो और माँ का आशीर्वाद लो। करमी झट पल्लू ठीक की और आगे बढ़ी, पर बुढ़िया ने दोनों पैर कछुआ की भांति छुपा लिया और बोली, "मेरे बेटे ने तुझे रख लिया तो ढुकनीद्धरखैलत्र की तरह ही अलग रह। मेरे जीते जी तुम मेरे घर के हंडिसार में कदम नहीं रख सकती है। मेरा बेटा भले ही लाख कमा कर हम सबको खिलाता–पिलाता है, पर आज भी मैं इस घर की मालकिन हूँ...। बोलते–बोलते बुढ़िया ने किसी तरह खुद को नियंत्रित किया तो शांति देवी से बोली, "बहू, मेरी चिलम जला दो...।"
शाम हो चुकी थी, बाहर की एक गोदरीनुमा कोठरी में करमी ने डेरा डाला। गाजो मोदी की फरियाद पर तीसरे दिन पीपल पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। गाँव में मुखिया नन्दलाल महतो का दबदबा था। उसके फैसले के विरु) कोई आवाज उठी हो, ऐसा कभी देखने को नहीं मिला। पंचायत में जमा भीड़ भी इस बात का सबूत दे रहा था कि लोग इस पंचायत के फैसले को मानते हैं। धीरे–धीरे लोग इसी पर चर्चा कर रहे थे कि कुछ दूरी पर हल्ला सुनाई दिया। मुखिया भक्त जीतना एक मोदी लड़के को धकियाते हुए पंचायत तक घसीट लाया, "स्याला, मुखिया जी पर इल्जाम लगाता है...।"
"जीतन, क्या बात है, सामने आकर बताओ।" मुखिया नन्दलाल महतो ने हाँक लगाई।
जीतन ने उस लड़के को धकियाते हुए पंचायत के बीच खड़ा कर दिया। जीतन का हाथ अब भी उस लड़के की गर्दन पर कसा हुआ था। यह देख मोदी जमात में थोड़ा गुस्सा दिखा। पर किसी का मुँह नहीं खुला। ऊपर से मुखिया की चेतावनी, "ऊफियों का पर निकल गया है लगता...!" इसके बावजूद उस लड़के ने मुँह खोल दिया, "हमने सुबह झुमरू को मुखिया जी के घर जाते देखा था।"
"तो...?" कोई बोल उठा।
इस पर थोड़ी देर तक पंचायत में हाय, हपर! होता रहा। फिर लोग असल मुद्दे पर आ गए। दोनों पक्षों की बात सुनी गई। करमी से पूछा गया। उसने अपनी बात दोहराई, "हमने, अपनी मर्जी से शादी की है, कोई जबरन नहीं।"
मुखिया को फैसला करने का सूत्रा मिल गया। उन्होंने कहा, "झुमरू ने करमी को रखकर कोई गुनाह नहीं किया है। जब दोनों राजी हैं, तो हम क्यों गुनहगार बनें।"
इसी के साथ पंचायत उठ गयी थी। गाजो मोदी को लगा पंचायत में सही फैसला नहीं हुआ। पक्षपात किया गया, "सब फैसला पहले से तय था।" और उठ कर चल दिया था।
झुमरू फैसला तो अपने पक्ष में करा लेने में सफल हो गया था। लेकिन उसकी असल परीक्षा, माँ और पत्नी को अपने पक्ष में करने के बाद ही पता चल पाएगा।
माँ की एक ही जिद "मेरे जीते जी वह इस घर के अंदर कदम नहीं रख सकती है...।"
करमी का घर में आए, अभी आठ–दस दिन ही हुआ था कि एक रात घर में तूफान–सा उठा। दरअसल जब से करमी इस घर में आई थी, झुमरू का सारा समय उसी के साथ बीतता, झुमरू अपना और करमी का खाना भी करमी की कोठरी में ही ले जाता और दोनों साथ–साथ खाते। शांति देवी की तरफ से झुमरू ने जैसे नजरें ही फेर ली थीं। कभी ताकता भी नहीं था। कभी सामने पड़ जाता तो वो नजरें बचाकर निकल जाता। पति की यह उपेक्षा शांति देवी से सहा नहीं जा रहा था। मन को कचोटता। वासना की आग उबाल मारती। भात–मांड से पेट की आग तो बुझ जाती परन्तु देह की आग...! उस रात शांति उसी आग से वशीभूत होकर पहुँची थी पति के पास। उस वक्त झुमरू और करमी दोनों किसी बात को लेकर मीठी बहस कर रहे थे कि अचानक शांति पर करमी की नजर पड़ी। करमी कांपती हुई झुमरू को इशारा किया। एक पल के लिए झुमरू भी शांति को देखता रह गया था। अपनी भड़ास निकालने में शांति ने जरा भी देर नहीं की, "तुम दिन–रात इसी भैंसिया के साथ लगे रहोगे तो मैं किसके पास जाऊँगी? सुन रहे हो, मुझे भी तुम्हारी जरूरत है। मैं बूढ़ी नहीं हो गई हूँ...!" आदेश मिश्रित आमंत्राण सुनकर झुमरू भड़क गया। वह कब खाट से उठा, कब शांति देवी की झोंटीद्धबालत्र पर उसका हाथ गया और कब शांति देवी जमीन पर चित गिरी खुद शांति देवी को पता न चला। उल्टे उसे लगा कि वह खटिया पर सोई है और झुमरू उस पर चढ़ा हुआ है। लेकिन जब उसकी देह पर पति की जोरदार लात पड़ी तो जैसे वह जाग उठी थी। यह सब कुछ इतनी जल्दी हो गया कि करमी को भी झुमरू को रोकने–टोकने का मौका नहीं मिला। अब झुमरू चीख रहा था, "भाग हरामजादी, भाग, नहीं तो आज मैं तुम्हारी देह की सारी गरमी यहीं निकाल दूँगा।"
सौतन के सामने अपनी दुर्गति देख कर शांति देवी घायल नागिन की तरह फुफकार उठी थी, "अरे, पांठा, पहलवान बना है, हमें पिटता है, मैं भी

देखती हूँ, यह चुड़ैल कब तक इस घर में रहती है...।"
शांति देवी की प्रचंड चेतावनी ने करमी को इस कदर भयभीत कर दिया कि वह दूसरे दिन ही गाँव छोड़ धौड़े में चली गई। हाँ जाने से पहले झुमरू से एक बात कह गई, "जब तक मैं वहाँ अपने लिए एक अलग से छोटा–सा घर बनवा नहीं लेती हूँ, तब तक चमनी दीदी के साथ रहूँगी। जब तुम्हारा मन करे, मिलने चले आना...।"
करमा परब के दिन कमलेश का जन्म हुआ। लोगों ने नाम करमा रखा। करमी के अँधेरे जीवन में जैसे सूरज उग आया था। फिर तो उसके जीवन के आकाश में दिन–प्रतिदिन चाँद–सूरज उगता और डूबता रहा। वर्तमान अतीत बनता गया और जीवन के पहिया को गति मिलती गयी। बेटे के लालन–पालन, उसकी शिक्षा–दीक्षा और पहनावा–ओढ़ावा में करमी इस कदर डूब गई कि उसके काले बाल कब सफेद हो गए पता तक नहीं चला।
बचपन का वही करमा, पढ़–लिख कर अब कमलेश के रूप में जवान हो चुका था। इतना जवान कि जब उसने कजेता घर के आँगन में अनशन का ऐलान कर दिया तो लोग सकते में आ गए थे। जाति ठेकेदारों को तो उसने तिलमिला कर ही रख दिया था।
आखिर करमी ने भी तो इसी कमलेश को कुंदन की तरह निखारने में अपना एक पूरा जीवन बिता दिया। सफेद पड़ते सिर के बाल, उसकी ढलती उम्र का ही तो संकेत था। परन्तु मन से वह कभी कमजोर नहीं हुई, ऐसा न कभी देखा गया और न किसी के मुँह से सुना। एक परियोजना की तरह कमलेश को सींचती–सँवारती रही। स्कूल से लेकर कॉलेज तक पहुँचाया उसने बेटे को, लेकिन कभी बेटे को बाप का अभाव महसूस होने नहीं दिया— किसी खास अवसर पर खटकने तक नहीं दिया था। कमलेश भी सारी परिस्थितियों को समझते हुए सिर्फ अपनी पढ़ाई में लगा रहा। भूल कर भी उसने कभी माँ से उल्टे–पुल्टे सवाल नहीं किए और माँ की भावनाओं का पूरा–पूरा आदर करता रहा। हाँ मन में एक इच्छा, एक साध जरूर थी कि वह कभी एक बार गाँव जरूर जाएगा। चाहे वो समय कुछ ही पल का क्यों न हो। लेकिन हर बार परब की भांति समय निकलता जा रहा था। दशहरा(दुर्गा पूजा) की छुट्टी में वह होस्टल से माँ के पास आया था। संयोग से झुमरू भी पहुँचा था करमी के पास। बहुत दिनों बाद बाप–बेटे का मिलन हो रहा था। इसके पहले होली में दोनों मिले थे। सफेद दाढ़ी में झुमरू बूढ़ा बांदर लग रहा था। यह देख करमी खिलखिला कर हँस पड़ी थी। कमलेश भी हँसा था। "अच्छा मौका है" कमलेश ने सोचा था और गाँव जाने की तैयारी में लग गया था।
दूसरे दिन सुबह बाप के साथ कमलेश गाँव आ गया था। उस गाँव में जिसे आज तक देखा नहीं था, केवल सुन रखा था— मानपुर! जिसे आज तक अपना गाँव कह नहीं सका था। ऐसी बात नहीं थी कि मानपुर को अपना गाँव कहने से वह डरता था, ऐसी भी बात नहीं थी कि वह उस गाँव से घृणा करता था। बस मन में एक स्वप्न–सा भाव बना हुआ था। क्या सोच रहे होंगे लोग उसके प्रति, किस तरह का व्यवहार करेंगे लोग उसके साथ। विचित्रा–सी अनुभूति हो रही थी उसे। देर रात तक वह इन्हीं बिन्दुओं पर सोचता रहा था।
डायरिया–डिसेन्टरी से गाँव के जोधन महतो की मृत्यु हो गई थी। आज उसका कुटुम्ब भोज था। कोखपोछवा के रूप में जनमे अपने सौतेले भाई मंगरा के साथ कमलेश भी पहुँचा था—कजेता घर में। जन्म के बाद पहली बार कमलेश ने गाँव में कदम रखा था। हाँ इसके दो माह पूर्व और गाँव छोड़ने के बाद पहली बार करमी गाँव में कदम रखने की पहल कर चुकी थी। उसका आना भी विचित्रा रूप में हुआ था।
शाम का समय था। दुकान से एक जरूरी सामान लेने मैं घर से निकल रहा था कि तभी आँगन में खड़ी महिला पर नजर पड़ी तो चौंक उठा। वह करमी थी, "दीदी तुम! अंदर आओ, बाहर क्यों खड़ी हो?"
अंदर पहुँच कर पहले मैंने पत्नी से उसका परिचय कराते हुए कहा, "आरती, तुमको करमी दीदी के बारे में बताया था न, वो यही है...।"
खबर पाकर झुमरू दौड़ा चला आया था। वह बार–बार करमी से घर चलने को कहता रहा और जवाब में करमी कहती रही, "तुम मेरी चिंता छोड़ो, बेटे के बारे में सोचो, वह अब मुझसे सवाल करने लगा है कि माँ, गाँव में हमारे लिए जगह है या नहीं?" वह एक पल रुकी थी फिर बोली, "अगर जगह है तो बोलो, नहीं है तो भी बताओ, ताकि मैं उसे अपने ढंग से संभाल सकूँ, जैसे आज तक सँभालती रही हूँ...।"
"तुम कैसी बात करती हो, कमलेश हमारा बड़ा बेटा है, हमारी संपत्ति में उसका भी उतना ही हक है जितना अन्य बेटों का है। तुम घर तो चलो...।"
"अभी नहीं!" करमी की आवाज दूर खंडहर से निकलती लगी।
"अभी नहीं का क्या मतलब? पहले कहती थी माँ जीवित है। पर अब तो वो भी नहीं रही, उसको मरे दस साल से ऊपर हो गया, फिर अब...?"
"कहा न, पहले बेटे को ले जाओ...।"
उस दिन करमी दीदी का खाना–सोना हमारे यहाँ ही हुआ। दूसरे दिन पौ फटने से पहले वह गाँव की चौहद्दी से बाहर हो चुकी थी।
कजेता घर में खाने वालों का तांता लगा हुआ था। एक पांत उठती तो दूसरी पांत बैठने को आपा–धापी शुरू हो जाती थी। खाने के लिए एक–दूसरे को धकियाते देखना कमलेश को बड़ा मजा आ रहा था। गाँव के इस गंवारूपन में भी कितना सौहार्द था, कितना भाईचारा था। कमलेश को बड़ा सुखद आश्चर्य भी हो रहा था। ग्रामीण जीवन का यह उसका पहला अनुभव था। इधर मंगरा भी बैठने की जुगत में लगा हुआ था। तभी उसने कमलेश को एक पांत की तरफ खींचा था। कमलेश को अजीब लग रहा था, फिर भी उसे आनंद आ रहा था। सब ठीक–ठाक चल रहा था। इसी बीच एक पांत में जगह मिली, दोनों बैठ गये।
घना महतो पांत में पत्तल चला रहा था। कमलेश के पास पहुँचा तो उसकी वेशभूषा और पहनावा देख वह चौंका था। गाँव में लोग आदमी के शरीर का काला–गोरा नहीं देखते पर, कपड़े और पहनावे को घूर–घूर कर जरूर देखेंगे। यह कौन है? कहाँ से आया है? किसका बेटा है? गाँव में कभी दिखा नहीं। घना महतो के मन में कई सवाल उठ खड़े हुए थे। पत्तल तो उसने कमलेश और मंगरा दोनों को दिया, "मंगरा, तुम्हारे बगल में बैठा यह लड़का कौन है, कभी गाँव में देखा नहीं...?" आखिर घना महतो ने मंगरा से पूछ ही लिया था। मंगरा को यह कहाँ पता था कि यह बात उनसे किस प्रयोजन से पूछी जा रही है। उल्टे अपने बड़े भाई का परिचय देते हुए उसे गर्व महसूस हुआ। बोला था, "यह हमारा कमलेश दादा है, कॉलेज में पढ़ता है, कल ही शाम को घर आया है...।"
"मतलब कि यह करमी का बेटा है। है न...?" घना महतो ने जैसे जाति घंटा बजाते हुए कहा था, "एक मोदीन का बेटा, कुड़मियों की पांत में खाने बैठा है.. .!"
इस खुलासा से लोग चौंक उठे। जिसने भी मुँह में पुड़ी डाले थे, मुँह चलाना भूल गए, जो सब्जी को पुड़ी से लपेट रहे थे, उसके हाथ रुक गए। सब तरफ से एक ही आवाज आनी शुरू हो गई, "करमी का बेटा! करमी का बेटा! कौन है, कहाँ है, कैसा है... आदि आदि!" फिर तो कजेता घर में जैसे एक

सायरन–सा बज उठा था। देखते–देखते खलिहान मीटिंग के मैदान में बदल गया था।तभी किसी ने अपनी औकात उछाल दी, "अरे, मोदीन के बेटे को किसने पांत में बैठने दिया...?"

कुछ देर पहले तक कमलेश के मन में गाँव के प्रति सौहार्द और भाईचारा पर आश्चर्य हो रहा था, मौजूदा रंग–ढंग देख–सुन मन में एक नफरत–सा भाव उभर आया था। कमलेश एक सुंदर–सा सपना लिए गाँव आया था मगर यहाँ जातीयता की कँटीली झाड़ियों में उलझ गया।उसका शहरी मन एकदम से बगावत पर उतारू होने को मचलने लगा। आसन्न हालात से अब उसे लड़ना ही होगा नहीं तो उसका पढ़ा–लिखा होने का क्या अर्थ रह जाएगा? उसने मन में सोचा था।

तभी घना महतो ने सीधे कमलेश से कहा था, "सुनो, तुमको खुद सोच–समझकर बैठना चाहिए था। खैर, यहाँ से उठो, मोदी–महराओं के लिए घर के पिछवाड़े खाने की व्यवस्था की गई है, तुम उधर जाकर बैठो...।"

कमलेश से पहले मंगरा तमक कर उठ खड़ा हो गया और जोर से बोल उठा, "दादा, क्यों जाएगा उधर, यह हमारे साथ ही खाएगा। आप लोग हमारे बाप से खस्सी–भात किसलिए खाए थे?"

"हम बहस नहीं करना चाहते हैं, जात–भात खाए हैं लोग तो मुखिया जी से कहो, अगर इसको खाना है तो उधर ही जाकर खाना होगा...।"

घना महतो जिद पर अड़ गया था।

"दादा, कहीं नहीं जाएगा और खाएगा भी यहीं बैठ कर।" मंगरा भी अड़ गया था जैसे।कमलेश को पहले अंदेशा था कि घर में बड़ी माँ और तीनों सौतेले भाई उसे देखना भी पसंद नहीं करेंगे, लेकिन यहाँ मंगरा का यह रूप देखकर उसकी सारी आशंकाएँ निर्मूल साबित हुई।मंगरा का मतवाला रूप देखकर उसे बल मिला।फिर तो उसने भी एलान कर दिया, "अब तो खाना, खाना ही है और यहीं बैठकर खाना है, जिसको जो करना है, कर ले...।" और वह अनशन की मुद्रा में बैठ गया– समाधि स्थल सा।

"चाहो तो, हमें भी पकड़कर उठा दो...।" मंगरा भी कमलेश के बगल में बैठ गया था।

"अरे, यह तो अनशन पर बैठ गया...?" भीड़ भकुआ उठी थी।

"अब देखो, खस्सी–भात खाये लोगों का तमाशा...।" एक बूढ़े ने बात रखी।

"ठीक तो, जब खस्सी–भात खाकर, इसकी माँ को झुमरू महतो की पत्नी मान लिया तो उसके बेटे को जाति का बेटा मानने में कैसा एतराज?"

"यह जात–पात का टोटका ज्यादा दिन चलने वाला नहीं है...।"

"आखिर लड़का, झुमरू का ही तो बेटा है...!"

"अब वो जमाना नहीं रहा, आज तो दलित–चमार का बेटा भी कारखाने का बना जूता पहनता है...।"

ऐसी प्रतिक्रियाओं की उम्मीद नहीं थी घना महतो को, वह भीड़ में ज्यादा देर खड़ा नहीं रह सका, चुपके से निकल गया था।

खलिहान के पुआल में लगी आग की तरह बात समूचे गाँव में फैलती चली गई थी।अनशन की बात मुखिया के कानों से जा टकरायी।अस्सी बरस का जर्जर पिंजरा झनझना–सा उठा था। जैसे कोई नादान लौंडे ने जोर से पत्थर दे मारा हो।सन जैसे पके बाल खड़े हो गये थे।उसके जीवन काल में ही उसके दिए फैसले को यहाँ चुनौती दी जा रही थी। उन्होंने चौकीदार को बुलाया।बात झुमरू ने भी सुनी, वह दौड़ा–दौड़ा पहुँचा था कजेता घर।बेटों के चेहरे का भाव देख सब समझ गया था।पहले अगल–बगल की जमा भीड़ को देखा, फिर कसैले स्वर में कहा था, "बेटे, घर चलो, तुम्हारी जज्बातों और भावनाओं की कद्र करने वाले यहाँ कोई नहीं हैं।" आज झुमरू का चेहरा भी तमतमा उठा था, "बेटे, खस्सी–भात खिलाने वाले को कहाँ याद रखेंगे! हाथी भी काट कर खिला दे कोई, फिर भी खिलाने वाले को भूल जाना इस समाज का दस्तूर है। जाति कीचड़ से सना हुआ है– यह समाज?"

तभी गाँव का चौकीदार आता दिखा।लोगों की उत्सुकता बढ़ गई।

कमलेश पिता के साथ खींचा–खींचा–सा पंचायत स्थल पर पहुँचा तो वहाँ काफी भीड़ हो चुकी थी। पीपल का पेड़ और उसके इर्द–गिर्द का स्थान कोलाहल का केन्द्र बना हुआ था। भीड़ में मोदी जमात भी शामिल था। क्षितिज पर सूर्य का ढलना जारी था, तो सामने पीपल के पेड़ पर पक्षियों का आना शुरू हो चुका था। बीच–बीच में वातावरण में एक शोर–सा उठता था।लोगों की उत्सुकता आज चरम पर थी।बस अब प्रतीक्षा थी मुखिया के आने की, वे भी आते हुए दिखे।उनको देखते ही झुमरू उनकी ओर लगभग दौड़ता हुआ आगे बढ़ गया। कई आँखें झुमरू का पीछा करने लगीं। दबी–दबी आवाज में एक शोर–सा उठता कि झुमरू आज फिर जीतेगा, कि निर्णय आज फिर झुमरू के पक्ष में ही होगा। कमलेश को भी सारी स्थिति और सारा समीकरण समझने में बहुत देर न लगी।उसका शहरी मन व्यवस्था के इस बाजारू रूप को देख विरक्ति से भर उठा। मान लो पिताजी, मुखिया जी को मनाकर निर्णय अपने हक में करवा ही लेते हैं और एक ही पांत में बैठने का अधिकार भी मिल जाता है, तो क्या वह सबके हृदय में भी स्थान पा लेगा? ऊँच–नीच के तराजू पर तौली जानेवाली नजरें क्या उसके सजातीय होने का सम्मान दे पाएँगी?

बगल के गाँव में आकर ठहरी, करमी को इधर की खबरें लगातार मिल रही थीं। पक्ष–प्रतिपक्ष की बातें भी उसे सुनाई पड़ रही थीं, फिर भी खुद को रोके हुए थी वह, "बेटे को समाज में जगह मिल जाए, उसको अपनी चिंता नहीं।" मन में वही बात बैठी थी।

उधर कमलेश का शहरी मन हुँकारने लगा था। उसे लगा, पीपल के इर्द–गिर्द बैठे लोग मनुष्य नहीं केंचुए हैं, जिनको जहाँ "आधरा–खुराक" मिला वहीं चिपक जाते हैं।

झुमरू वापस आता दिखा, शायद उसका काम हो गया था।उसका खिला हुआ चेहरा इसी बात का सबूत था।उसने आते ही कमलेश को सांत्वना के स्वर में कहा, "अब तुम्हें घबराने की कोई जरूरत नहीं है, मुखिया मान गया है, अब सबको मानना होगा।"

लेकिन कमलेश के मन में कुछ और ही उथल–पुथल हो रही थी। वह निर्विकार होकर झुमरू को देख रहा था। उसकी सीधी नजरों का प्रहार झुमरू भी नहीं झेल सका।शंकित मन से उसने पूछा, "ऐसे क्या देख रहे हो बेटे?"

"देख नहीं रहा हूँ पिताजी, सोच रहा हूँ।मुखिया जी की न्याय व्यवस्था पर। उनकी हस्ती पर।उनकी लाठी की पकड़ पर।पंचायत के ढोर–गंवार जैसे लोगों को यह एक साथ कैसे हाँक लेते हैं!"

"बड़े लोगों की यही तो बड़ी खासियत होती है बेटे।"

कमलेश का दोनों हाथ कद्दावर मुखिया के सम्मान में जुड़ते चला गया था, "मुखिया हो तो ऐसा ही हो!" मुँह से निकला था।

लघुकथा

मेरे शहर के परिंदे

बसंत राघव
पंचवटी नगर, बोईरदादर, रायगढ़, छत्तीसगढ़,
मो.– 8319939396

मेरा शहर छोटा, किन्तु जंगल, पहाड़ और परिन्दों से गुलजार रहता था। सुबहो–शाम संगीत और कत्थक से थिरकता रहता था यहाँ का राजमहल। घर के आँगन में अमरूद, आम और मुनक्के के पेड़ हुआ करते थे। जहाँ सुबह–सुबह रंग–बिरंगी चिड़ियों की सुरीली चहचहाहट के बगैर दिन के आगाज की हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे। कितने सुकूनदेह होते थे वे बेशकीमती पल। लेकिन कुछ वर्षों से यहाँ छोटी–बड़ी कई फैक्ट्रियाँ आने लगीं। देखते–देखते यह शहर बड़ा होकर औद्योगीकरण की गिरफ्त में आ गया। समूचा शहर कंक्रीट के जंगल में तब्दील हो गया। यह सब अचानक इस तरह घटित हुआ कि पता ही नहीं चल पाया। शनैः शनैः शहर के दामन से हरियाली की चादर गायब होने लगी। जिधर देखो बस राख ही राख। सड़कों पर धुंओं का गुबार, हादसों का शहर बन गया मेरा अपना शहर। अब न आंगन रहा न ही वे पेड़, जिसमें चिड़ियों के कुनबे के शोर से गुलजार होता रहता था मेरा घर–आंगन। अब तो वहाँ दो मंजिले मकान का निर्माण हो चुका है, जिसमें बाहर से रोजी–रोटी की तलाश में आये हुए लोग किराए में रहते हैं। छत की मुंडेर, कमरे में टंगी तस्वीरें, रोशनदान के पट और छज्जे, चिड़ियों की आवाजाही, चोंच में तिनके दबाए फुर्र से उड़कर उनका आना–जाना, नीड़ के निर्माण के लिए उनकी व्यस्ततम दिनचर्या, उनकी जिद्द और मासूमियत से अचानक महरूम हो गया है पूरा का पूरा परिवेश। न जाने कितने वर्ष हो गए हैं, जब बुद्ध की तस्वीर के पीछे घास–फूस के घोंसले में महफूज नन्हें चूजों के लिए घात में बैठी पड़ोसी की बिल्ली पर वे किस तरह टूट पड़े थे। वह मंजर आज भी मुझे याद है। सारा आसमान उठा लिया था उन लोगों ने। आज वही आसमान जैसे निःशब्द हो गया है। उनके कलरव का अलार्म सुनकर उठने वाली मुनिया अब काफी देर तक सोती रहती है। सुख के पलछिन की तरह न जाने तुम सब कहाँ अदृश्य हो गए ओ मेरे प्यारे परिंदों?

लघुकथा

भोजन

सरोजिनी नौटियाल
आराघर, देहरादून,
मोबाइल– 9410983596

सुरेन्द्र बाबू ने प्लेट पर नजर डाली। वही दाल–भात। इतना भर–भर कर रखा हुआ है कि उनका मन बगावत करने लगा। खाने की इच्छा तिरोहित हो गई। खाना जिस ढंग से परोसा हुआ है उससे परोसने वाले के मन को आसानी से पढ़ा जा सकता है। स्टील की प्लेट एकदम भरी हुई। दुबारा की कोई नौबत न रहे। कितनी बार बहू से कह दिया है— इतना मत परोसा करो। नहीं खाया जाता।

'जितना खा सकते हो, खा लो, बाकी छोड़ देना...' बहू के तैयार जवाब सुन–सुन कर अब उन्होंने कुछ भी कहना छोड़ दिया है। दही के लिए भी बोलना बंद कर दिया। सुरेन्द्र बाबू की पेंशन इतनी तो है कि वे जितनी चाहे दही खा सकते हैं। लेकिन छोटे बेटे के आधे– अधूरे रोजगार की स्थिति ने उनको पाई–पाई बचाने पर मजबूर कर दिया। बस इसी बात से बड़ी बहू उनसे सतत बेरुखी से बात करती है। उसका तकादा है कि जब वे छोटे बेटे को पैसों की मदद करते हैं, तो रहें भी उनके साथ।

पर, वे क्यों रहें मकान के पिछले हिस्से में। मकान उनका है, वे जहाँ रहना चाहेंगे, वहाँ रहेंगे। वे तो हमेशा से ही ऐसे रह रहे हैं। जब तक सुभद्रा थी, बड़ी बहू उनके साथ रह रही थी। सुभद्रा गई, सब कुछ बदल गया। अब वे रह रहे हैं बहू–बेटे के साथ। कितनी विचित्र बात है।

अपना मकान ही बेगाना हो गया।... बहुत कुछ याद आने लगा। चित्त में कड़वाहट तिर गई। उधर खाने की प्लेट अलग उनको ललकार रही है। उठो, सिरहाने पर धरी पानी की बोतल उठाई और खाने की हिम्मत जुटाने लगे। दाल–भात के साथ उनको और भी बहुत–कुछ निगलना है– उपेक्षा, अपमान, तिरस्कार के घूँट। एकाएक उनको जाने क्या सूझा। अपने जिंदा होने के अहसास को पूरी ताकत से इकट्ठा किया, भोजन को हाथ जोड़े, अखबार से ढका और पानी पीकर बिस्तर की ओर चल दिए। लेट गए। मन रोया, सूखी आँखें आर्द्र हुईं और उसी में कब आँख लग गई, पता ही न चला।... सुभद्रा सिरहाने पर बैठी अपने आँचल से उनको सहला रही है। 'अरे, आप तो खाली पेट सोने चले आए', कहती सुभद्रा उठी, रसोई में चली गई। रसोई, वही वाली, सुभद्रा की रसोई। वे चौकी पर बैठे हैं। सामने पानी का लोटा और एक गिलास रखा है। काँसे की थाली में भोजन लिए सुभद्रा मुस्कुराती हुई चली आ रही है। दाल, भात, सब्जी, रोटी, दही, पापड़, चटनी, हरी मिर्च– सब बड़े चाव से रखा हुआ है। सुभद्रा आग्रह कर–कर के खिला रही है। वे तृप्त हुए जा रहे हैं। सुभद्रा मंद–मंद मुस्कुरा रही है। वह फिर रसोई की तरफ चली गई। लौटी तो हाथ में खीर की कटोरी। चाँदी की वही कटोरी जो बचपन में मामा लाए थे। जैसे ही खीर की कटोरी थामे हाथ आगे बढ़ा, लगा माँ है। कलाई में वही हरी–हरी चूड़ियाँ...। मुख से 'माँ' निकला ही था कि माँ अदृश्य हो गई। वे चकरा गए। सुभद्रा दूर खड़ी उनको देख रही है। वह दूर होती जा रही है। वे परेशान हो गए। उन्होंने हाथ बढ़ाया, अरे..., सुभद्रा कहाँ चली गई।

"दादा जी... दादा जी", पुकार सुरेन्द्र बाबू को बहुत महीन, किसी गहरे कुएँ से आती हुई लगी। कंधा हिला रहा है कोई, "दादा जी, उठिए न, कितना सोओगे?... शाम हो गई है...।" आँखें खुलीं। सामने चौदह वर्षीय पोता खड़ा है। "दादा जी, चाय पी लीजिए... आपने खाना भी नहीं खाया। तबीयत ठीक है आपकी?"

"खाना...? खाना खा तो लिया मैंने", दादा जी के मुख से निकला।

लघुकथा

डॉ. प्रदीप कुमार शर्मा
पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय,
रायपुर, छत्तीसगढ़,
मो.–9827914888

लाइक एंड कमेंट्स

रात के लगभग साढ़े ग्यारह बजे रामलाल जी का हृदय गति रुकने से देहांत हो गया। उनका बड़ा बेटा शंकरलाल गाँव से सैकड़ों मील दूर एक शहर में अफसर था। छोटे बेटे भोलाराम ने तुरंत पिताजी की मृत्यु की सूचना मोबाइल के जरिए दे दी।

पिताजी की मृत्यु की सूचना पाकर बड़ा बेटा शंकरलाल दाह संस्कार में शामिल होने के लिए तुरंत सरकारी गाड़ी से रवाना हो गया।

लाख कोशिशों के बावजूद शंकरलाल दोपहर एक बजे के पहले गाँव नहीं पहुँच सकता था। परंपरा के मुताबिक रात को दाह संस्कार नहीं किया जा सकता, साथ ही किसी भी घर में लाश पड़े रहने पर न तो चूल्हा जला सकते हैं, न ही खाना खा सकते हैं।

समस्या गंभीर थी। उस पर भोलाराम ने स्पष्ट कह दिया था कि जब तक भैया नहीं आएँगे, डेड बॉडी नहीं उठाया जाएगा। बड़े भाई होने के नाते मुखाग्नि देने का पहला हक शंकरलाल का ही था और वे यहाँ पहुँचने के लिए रवाना भी हो चुके थे।

भूखे–प्यासे गाँव वाले शंकरलाल के पहुँचने की राह देख रहे थे। सब यह मानकर चल रहे थे कि डेढ़ बजे तक वे यहाँ पहुँचेंगे, एक आध घंटा रोना–धोना चलेगा। दो–ढाई बजे से शवयात्रा निकाली जाएगी और तब घरों में चूल्हा जलेगा।

आशा के अनुरूप शंकरलाल एक बजे ही पहुँच गया। पर ये क्या? रोना–धोना तो दूर, चेहरे पर शिकन तक नहीं। उसने अपने लैटेस्ट स्मार्टफोन से डेड बॉडी की आठ–दस फोटो लिए और अपने छोटे भाई भोलाराम से कहा, "यदि पूरी तैयारी हो चुकी है, तो जल्दी से शवयात्रा निकाली जाए।"

फिर उसने अपने भतीजे को बुला कर कहा, "बेटा, अभी जब शवयात्रा निकाली जाएगी, तब तुम हर एंगल से अच्छे से कुछ फोटो ले लेना। स्पेशली जब मैं पापाजी को मुखाग्नि दूँगा, तब की। और हाँ, मोबाइल जरा संभल के चलाना। बहुत महँगा है।"

डेढ़ बजे से कुछ पहले ही परंपरा के अनुसार शवयात्रा निकाली गई। गाँव वालों ने भी राहत की साँस ली।

मुखाग्नि देने के बाद तुरंत ही शंकरलाल भतीजे से अपनी मोबाइल लेकर खींचे गए फोटो देखने लगा। भतीजे की फोटोग्राफी देख कर वह बहुत संतुष्ट लग रहा था।

अब लोग अलग–अलग समूहों में चिता शांत होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कोई समूह व्यापार, तो कोई राजनीतिक चर्चा में मगन था, तो कुछ लोग अपने–अपने मोबाइल में गेम खेल रहे थे या फिर चैटिंग कर रहे थे।

उधर पिता की चिता जल रही थी, इधर शंकरलाल फेसबुक में फोटो एडिट कर पोस्ट करने में बिजी था।

चिता बुझने तक शंकरलाल संतुष्ट हो गया था, क्योंकि घंटे भर में ही नौ सौ लाईक और पाँच सौ कमेंट्स आ चुके थे। श्मशान घाट से लौटते समय वह साथ चल रहे लोगों को बड़े गर्व से बता रहा था कि अब तक एक हजार लाईक मिल चुके हैं।

व्यंग्य

डॉ. अवधेश चन्दसौलिया
दीनदयालनगर, ग्वालियर(म.प्र.),
मो.– 9425187203

चुनाव ड्यूटी

चुनाव ड्यूटी पर तैनात एक सिपाही अपने अन्य सिपाहियों से कह रहा था कि हमारा टी. आई. बहुत भला है। और हमारा स्टॉफ भी पूरी तरह ईमानदार है। हमारे थाने के क्षेत्र में आने वाले इलाके में हम सबका एरिया बँटा है। हर किसी को जिम्मेदारी मिली है पैसा उगाहने की। कोई सिपाही उगाता है छोटे–छोटे ठेले–ठिलिया। जमीन पर बैठने वालों से पन्द्रह रुपये। थाने से गुजरने वाले टेम्पो, तांगों, ऑटोवालों से चालीस रुपये प्रतिदिन। ट्रेक्टर वालों से एक सौ रुपये, बसों से एक सौ रुपये और ट्रक वालों से 200 से 500 रुपये प्रतिफेरी। टी. आई. देखते हैं बड़े–बड़े मामले जैसे–चोरी, डकैती, आगजनी, सहजनी, मर्डर, छुरे, काला बाजारी/ आतंकवाद के मामले। सेटिंग के बाद मुंशी लिखता है वैसी रिपोर्ट। जो सिपाही लाते/ ले जाते कैदियों को अदालत या जेल में उसको भी मिलते हैं/ ढेर सारे नोट। मिलती है कैदियों को फिर वैसी सुविधा। हम सबकी ड्यूटी बदलती है हर माह रोटेशन से। सभी लाते हैं कमाकर थाने में/ फिर बँटता है हिस्सा सबको हैसियत के अनुसार/ ईमानदारी से चलता है हमारा धंधा। खाना–पीना–यात्रा/ सब कुछ मुफ्त/ बचती है पूरी सैलरी। वह कह रहा था/ साथी सुन रहे थे धीरे–धीरे। सब सो गए। मैं भी सो गया/ कल के इंतजार में। सोच रहा था/ कल कैसे करेंगे/ चुनाव–ड्यूटी बिना पैसे के बेचारे।

सुसंभाव्य
प्रकाशन
कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303